अंक :१०९

जनवरी - मार्च २०१०

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

ज्ञान वर्मा, डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम',
जसविंदर शर्मा, अमर स्नेह, के. वरलक्ष्मी

१५ रूपये

जनवरी-मार्च २०१०
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"
संपादिका
मंजुश्री
संपादन सहयोग
प्रबोध कुमार गोविल
जय प्रकाश त्रिपाठी
अश्विनी कुमार मिश्र
हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ५०० रु., **त्रैवार्षिक** : १२५ रु.,
वार्षिक : ५० रु.,
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा केवल "**कथाबिंब**" के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
Naresh Mittal, Gerard Pharmacy,
903 Gerard Avenue, Bronx NY 10452
Tel : 718-293-2285, 845-304-2414 (M)

●"**कथाबिंब" वेबसाइट पर उपलब्ध**●
www.kathabimb.com

e-mail : kathabimb@yahoo.com
(कृपया रचनाएं भेजने के लिए ई-मेल का प्रयोग न करें.)

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

क्रम

कहानियां

॥ ७ ॥ वह कल नहीं आयेगा / **ज्ञान वर्मा**
॥ १२ ॥ वादियों का दर्द / **डॉ. तारिक असलम "तस्नीम"**
॥ १६ ॥ समर्पण / **जसविंदर शर्मा**
॥ २० ॥ खिसकते विराम पर इंतज़ार / **अमर स्नेह**
॥ २४ ॥ मुन्नी (तेलुगु कहानी) / **के. वरलक्ष्मी**

लघुकथाएं

॥ १८ ॥ महान भारत / **नरेंद्र कौर छाबड़ा**
॥ २९ ॥ स्वतंत्रता / **संजय पुरोहित**
॥ ४९ ॥ अलग-अलग दर्शक / **ज्ञान देव मुकेश**
॥ ५१ ॥ दौड़ / **डॉ. रामनिवास "मानव"**

कविताएं /ग़ज़लें

॥ २२ ॥ बोना गन्ना छोड़ दे ! / **गाफिल स्वामी**
॥ ३३ ॥ मैं अक्सर हैरान होता हूं ! / **पंकज शर्मा**
॥ ३६ ॥ ग़ज़ल / **देवेंद्र कुमार पाठक**
॥ ४१ ॥ भाग-दौड़ / **राजेंद्र "आहुति"**
॥ ४८ ॥ ग़ज़ल / **डॉ. रंजना वर्मा**
॥ ४९ ॥ ग़ज़लें / **केवल गोस्वामी**
॥ ५० ॥ कविताएं / **तेज राम शर्मा**, ग़ज़ल / **डॉ. रंजना वर्मा**
॥ ५१ ॥ ग़ज़ल / **हौशिला "अन्वेशी"**

स्तंभ

॥ २ ॥ "कुछ कही, कुछ अनकही"
॥ ४ ॥ लेटर बॉक्स
॥ ३४ ॥ "आमने-सामने" / **ओ३म प्रकाश मिश्र "कंचन"**
॥ ३७ ॥ "सागर-सीपी" / **विश्वनाथ सचदेव**
॥ ४० ॥ "बाइस्कोप" (*सविता बजाज*) / **सुधाकर शर्मा**
॥ ४२ ॥ वातायन
॥ ४४ ॥ पुस्तक-समीक्षाएं

आवरण चित्र : डॉ. अरविंद
(चार गुलाब : एक घरेलू उद्यान, रांची)

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

इक्कीसवीं सदी का एक दशक समाप्त हुआ और इसी के साथ "**कथाबिंब**" के प्रकाशन के ३१ वर्ष भी पूर्ण हुए. इक्कीसवीं सदी कैसी होगी, इस प्रश्न को लेकर वैज्ञानिक, व्यापारी, जनसामान्य सभी व्यथित थे. सबसे बड़ी चिंता थी कि २००० को "००" के रूप में इंट्री करने से संगणक कहीं फेल न हो जायें ! लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ. सब कुछ सामान्य गति से चलता रहा. किंतु इक्कीसवीं सदी के पहले दशक ने मानव के समक्ष संभावनाओं के अनेक द्वार खोल दिये हैं. इंटरनेट के माध्यम से हर तरह की जानकारी आज पल भर में उपलब्ध की जा सकती है. दूरसंचार व प्रसारण के नित नये आयाम सामने आ रहे हैं. यहां ध्येय विस्तार में जाना नहीं है. बस इतना ही कि वसुधैव कुटुंबकम की भारतीय संकल्पना को साकार करना अब कठिन नहीं रह गया.

इस अंक के साथ प्रकाशन में बरसों से चला आ रहा विलंब कुछ कम हुआ है. आशा है कि अगला अंक समय पर प्रकाशित होगा. इसी अंक में, पृष्ठ ५२ पर ***"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार २००९"*** के पुरस्कारों की घोषणा की गयी है. सभी पुरस्कार विजेता कथाकारों को हार्दिक बधाई एवं उनका अभिनंदन !

●

आइए, इस अंक की कहानियों का ट्रेलर देखें – ज्ञान वर्मा जी ने बरसों बाद कलम चलायी है – कहानी *"वह कल नहीं आयेगा."* फ़ैक्टरी में काम करने वाला, अपने काम में निपुण एक सीधा-सादा आदमी भूमंडलीकरण के इस दौर में स्वयं को पूरी तरह अनफिट महसूस करता है. कितने ही सब्ज बाग दिखाये जायें, शोषण तो आम आदमी का ही होना है. कहानी *"वादियों का दर्द"* (डॉ. तारिक असलम "तस्नीम") असद नाम के एक कश्मीरी युवक की कहानी है, कुछ लोग जिसका *"ब्रेन वाश"* करने की पुरज़ोर कोशिश करते हैं लेकिन उसकी अम्मी उसे सही राह दिखाती हैं और यहीं एक नयी सुबह का आगाज़ होता है. अगली कहानी *"समर्पण"* (जसविंदर शर्मा) दो भाइयों की कहानी है. जब तक मां जीवित रहती है दोनों में एक अलगाव बना रहता है लेकिन मां के न रहने पर दोनों के मध्य एक नयी समझ उत्पन्न होती है. अपनी कहानी *"खिसकते विराम पर इंतज़ार"* के माध्यम से अमर स्नेह रेखांकित कर रहे हैं कि आज के माहौल में अक्सर अकारण ही एक छोटी-सी बात कैसे तूल पकड़ लेती है. झगड़ा जिस बात से शुरू हुआ हो वह बात दीगर हो जाती है और खामख़्वाह बाहर का एक आदमी अपनी जान से हाथ धो बैठता है. अंक की अंतिम कहानी श्रीमती के. वरलक्ष्मी रचित तेलुगु कहानी *"पापा"* का अनुवाद है. *"पापा"* का अर्थ छोटी लड़की – *"मुन्नी"* होता है. भीड़ के कारण ट्रेन में सामान चढ़ाने की आपाधापी में एक दंपत्ति से मुन्नी किसी छोटे स्टेशन पर छूट जाती है. एक भिखारी बच्ची को बेचना चाहता है किंतु दूसरे दिन बच्ची की मां को परेशान हालात में देखकर भिखारी को अपनी मां का स्मरण हो आता है और वह अपना निर्णय बदल देता है और मुन्नी को लौटाना चाहता है. किंतु अंतत: क्या ऐसा संभव हो पाया ?

●

इक्कीसवीं सदी का एक दशक बीत जाने पर भी भारत देश के आम आदमी की समस्याओं की बात करें तो कोई ख़ास अंतर नहीं आया है. ग़रीबी, बेरोज़गारी, बिजली की समस्या, स्वच्छ पीने के पानी की समस्या, आतंकवाद, नक्सलवाद, कश्मीर में निरंतर घुसपैठ, जातिवाद, गांवों में स्कूलों-शिक्षकों, डॉक्टरों-अस्पतालों की कमी. इनके बारे में जो भी कदम उठाये गये हैं वे पूरी तरह ना-काफ़ी हैं. समस्याओं से निजात पाने के स्थान पर कुछ एक और विकराल हो गयी हैं. आज भी सामान्य वर्षा न होने पर बिजली और पानी की आपूर्ति प्रभावित होती है, खाद्यान्न व अन्य भोजन पदार्थों की कीमतें आसमान छूने लगती हैं. यह बहुत ही दुखद है कि जब तक किसी समस्या का आकार छोटा रहता है तब तक सारा सरकारी तंत्र एक "डिनायल" की स्थिति में रहता है. बाद में सब तथाकथित ज़िम्मेदार लोग गेंद एक-दूसरे के पाले में फेंकने लगते हैं. इसका ताज़ा उदाहरण छत्तीसगढ़ के दंतेवाड़ा में नक्सलियों द्वारा ७६ पुलिस कर्मियों का कत्लेआम है. दो वर्ष पूर्व उड़ीसा में एक बड़ी मोटरबोट से जा रहे सुरक्षाकर्मियों को पहाड़ियों से निशाना बना-बना कर मारा गया था. छुट-पुट पुलिसकर्मियों के मरने की घटना कोई ख़बर नहीं बनती – कभी १०, १५, कभी २० का मरना आम मान लिया गया है. इस बार अंतर केवल इतना है कि संख्या थोड़ी ज़्यादा है. पिछले चार साल में नक्सलियों द्वारा मारे लोगों की संख्या १००० से अधिक है. जबकि कारगिल युद्ध में कुल ६०० सैनिकों ने वीरगति पायी थी. अभी सिर्फ़ विचार किया जा रहा है कि पुलिसकर्मियों को वायु-कवर देना चाहिए कि नहीं ? केंद्रीय गृहमंत्री ने भी इस्तीफ़े की पेशकश की है. यदि आपके पास कोई ठोस नीति नहीं है तो गृहमंत्री बदल जाने से क्या होगा? माओवादियों का कब्ज़ा नेपाल

में तो हो ही गया है. नेपाल से लगे उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल और नीचे झारखंड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र के बहुत सारे जिलों में भी इनके पैर जमने लगे हैं. पिछली सरकार वामपंथियों की बैसाखियों पर खड़ी थी, आये दिन समर्थन वापस लेने की धमकियां दी जाती थीं. पर अब तो ऐसी विवशता नहीं है. तुरत-फुरत संसद का विशेष अधिवेशन बुलाकर कड़ा निर्णय लेकर आवश्यक कार्यवाही होनी चाहिए.

इसके पूर्व कि कुछ और मुद्दों पर टिप्पणी की जाये एक रिपोर्ट सामने आयी है कि प्रति वर्ष हज़ारों पाकिस्तानी नागरिक वीज़ा लेकर भारत आकर लापता हो जाते हैं. वर्ष २००५ में यह संख्या ७००० के पास थी जो २००९ में बढ़कर १०,००० हो गयी. देश में होने वाली वारदातों के लिए भारत सरकार पाकिस्तान को चाहे जितना ज़िम्मेदार ठहराये, लेकिन सच्चाई यह है कि भारत आने वाले पाकिस्तानियों को सरकार उनकी मर्जी पर छोड़ देती है. भारत आने के बाद उन पर निगरानी रखने की कोई पुख़्ता प्रणाली नहीं है. भारत में "ग़ायब" होने वाले ज़्यादातर पाकिस्तानी अपने रिश्तेदारों से मिलने के बहाने आते हैं या कई क्रिकेट मैच देखने के लिए ख़ास शहर का वीज़ा लेकर आते हैं लेकिन बाद में उनका पता नहीं चलता. इसके अलावा भी ग़लत तरीकों से सीमा लांघकर आने वाले पाकिस्तानियों और बंग्लादेशियों की संख्या की कोई सीमा नहीं है. ऐसे में आतंकवाद से निपटने के हमारे किसी भी प्रकार के प्रयास कैसे सफल हो सकते हैं. अजमल कसाब पर चल रहे मुकदमे का कहीं अंत नज़र नहीं आ रहा है. फांसी भी हुई तो भी वह सब सुविधाओं के साथ "कतार" में लग जायेगा. २६ नवंबर ०८ को हुए मुंबई हमलों का मास्टर-माइंड, पहले पाकिस्तान का नागरिक और अब अमरीकी, हेडली ने अपना ग़ुनाह कबूलकर माफ़ी मांग ली है. अधिक से अधिक सजा होगी उम्र क़ैद. हेडली के प्रत्यार्पण से भी क्या होगा? उसे भारत लाना संभव भी हुआ तो वही होगा जो क्वात्रोची का हुआ. सालों मेहमान नवाज़ी की जायेगी बाद में यह कहकर छोड़ दिया जायेगा कि उस पर मुकदमा ही नहीं बनता है.

उधर जब दंतेवाड़ा में निरीह पुलिस वालों की जानें जा रही थीं तो ब्रेकिंग-न्यूज़ में मीडिया शोहेब मलिक और सानिया मिर्ज़ा की शादी की ख़बर दिखा-सुना रहा था. मीडिया के लिए ख़बर बनाना आज कितना आसान हो गया है. सारे "सेलेब्रिटी" ब्लॉगिंग करते हैं या ट्विटर पर अपने विचार प्रस्तुत करते रहते हैं और कुछ नहीं तो यू-ट्यूब तो है ही. मोबाइल कैमरे से भी पल भर में "फूटेज़" चैनेलों के पास पहुंच जाता है. फिर दिन भर, एक ही समाचार को "ब्रेकिंग-न्यूज़" में बारंबार दिखाकर जुगाली करते रहिए. कई बार तो यह समझ में नहीं आता कि समाचारों के बीच विज्ञापन दिखाये जा रहे या विज्ञापनों के बीच समाचार? मुंबई में समुद्र पर बने "सी-लिंक" सेतु के एक हिस्से के उदघाटन के समय अजीब तमाशा हुआ. अमिताभ बच्चन किसके बुलाने पर वहां पहुंच गये और महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री को उनकी बगल में बैठना पड़ा. अगर कहीं मैडम नाराज़ हो गयीं तो? मुख्यमंत्री अशोक चव्हाण तो इतना डर गये कि बाद में पुणे में हुए मराठी साहित्य के समापन कार्यक्रम में गये ही नहीं. अमिताभ बच्चन का अपराध यह कि उन्होंने गुजरात का ब्रैंड एम्बेसडर बनना स्वीकार कर लिया है. ऐसा लगा कि जैसे रातों रात गुजरात कहीं भारत से निकल कर पाकिस्तान का हिस्सा तो नहीं बन गया ! दिल्ली में एक कार्यक्रम में अभिषेक बच्चन को शिरकत करनी थी लेकिन वहां उनके पोस्टर फाड़ दिये गये. कहीं ऐसा तो नहीं है कि देश में अघोषित इमरजेंसी लग गयी है और किसी को मालूम ही न पड़ा हो. आपातकाल में किशोर कुमार को एक कार्यक्रम में जिसमें इंदिरा गांधी को महिमा मंडित किया जाना था दिल्ली बुलाया गया. वे नहीं गये तो विविध भारती ने किशोर कुमार के गाने बजाना बंद कर दिये. आपातकाल के बारे में कहा गया कि - लोगों को झुकने के लिए कहा गया तो वे लेट गये.

इन तमाम "ख़बरों" के बीच बरेली और बाद में हैदराबाद में हफ़्तों जो कुछ होता रहा, क्यों इतने दिन कर्फ़्यू लगा इस पर सारा मीडिया मौन रहा. इधर आई. पी. एल. भारत वापस आ गया है और अब तीसरा सीज़न चल रहा है. ४५ दिनों तक ६० मैच खेले जायेंगे. ललित मोदी ने खिलाड़ियों के अलावा कितने लोगों की किस्मत के द्वार खोल दिये? रोज़ करोड़ों का वारा-न्यारा होता है. खेल ख़तम होने के बाद जिन होटलों में टीमें ठहरती हैं वहां काफ़ी रंगीन पार्टियां होती हैं जिनमें क्रिकेट खिलाड़ियों के अलावा पेज़-थ्री की हसीनाएं होती हैं. इंट्री-फी मात्र ५० हज़ार रुपये. भारत की ग़रीबी का रोना फिर हम क्यों रोयें?

●

आज जिस तरह की स्थितियां पैदा की जा रही हैं एक बार फिर जयप्रकाश नारायण जैसे किसी नेता को सामने आना होगा जो बताये कि हमें हमारे लोग ही ग़ुलाम बना रहे हैं. आर्थिक शोषण के साथ-साथ लोगों को पूरी तरह असंवेदी बनाकर मानसिक शोषण भी निरंतर ज़ारी है.

अरविंद

लेटर बॉक्स

❖ 'कथाबिंब' का १०८ वां अंक पढ़कर बरबस पत्र लिखने को मन बेचैन हो उठा. पहली कहानी 'लौटना' एक बेहतर शिल्प और सुंदर कथानक के बीच चलकर ज़िंदगी और मौत के बीच के गहराते रहस्य को उजागर तो करती ही है, अस्पताली वातावरण, संबंधियों की मौन प्रार्थना कहानी को एक ऊंचाई भी प्रदान करती है. 'कभी कभी मेरे दिल में' संजीव निगम की कहानी ने एकाएक युवावस्था को दस्तक दे दी. इस बेरहम दुनियां में बड़ी मुश्किलों से दो दिल मिलते हैं. प्यार के अंकुर फूटे और विछोह हो गया, और एक अरसे बाद मिलन की घड़ी आने पर असहज हो अपनी ट्रेन छोड़ बीच में उतरने की बाध्यता, असमर्थता.... क्या नाम दिया जाये इसका. मथुरा में या किसी भी स्टेशन पर उतरकर 'एक था गुल और एक थी बुलबुल' या 'मैं जानता हूं... मगर फिर भी कभी-कभी मेरे दिल में ख्याल आता है' गाना गाने के सिवाय चारा क्या है? 'भेड़िए' कहानी पर तो यहां बुधिया का साहस और आत्मविश्वास पांचाली बनाने जैसी किसी भी रुढ़िवादिता से टकराने का माद्दा ज़रूर काबिले तारीफ़ है. पंच व्यवस्था के पनपते ऐसे अंधे कानूनों की खिलाफत अति आवश्यक है. प्रजातंत्र में कब तक ऐसे पंच दागदार फैसले करते रहेंगे और कब तक लोग सिर नवाकर उन्हें स्वीकार करते रहेंगे. ऐसे लोगों को सही राह पर लाने के लिए पत्थर तो उछालने होंगे...बदबूदार नीतियों का सर कलम करना ही होगा.

'मुक्ति' कहानी में पढ़-लिखकर बेरोज़गार रहकर भी चाय का ठेला चलानेवाला राजेश तमाम पढ़े-लिखे बेरोज़गारियों का नज़रिया बदलने के लिए यथेष्ठ है. बेरोज़गारी का रोना रोकर हाथ पर हाथ रखकर बैठना कदापि युक्तिसंगत नहीं है. कहानी का नायक अपनी मानसिक उहापोह में भी राह निकाल लेता है... शिक्षाप्रद और आदर्शमय है. कहानीकार नरेंद्र कौर छाबड़ा अपनी कहानी 'अपराध बोध' में लड़के और लड़की के बीच का तुलनात्मक अध्ययन कराने में सफल रही हैं. यह उन लोगों के लिए एक आइना है जो लड़कियों के साथ बेइंसाफ़ी करते हैं. मौक़ा आ गया है अब जब पीढ़ियों को बरबादी से बचाने के लिए लड़कियों को पालना होगा वरना पीढ़ियों का समीकरण बुरी तरह बदल जायेगा, मटियामेट हो जायेगा. बेटी बड़ी अनमोल होती है. यह सच उन्होंने कहानी के माध्यम से मनवा लिया है. हमें आशा दीदी, लता दीदी, प्रतिभा देवी चाहिए हैं तो बेटियों के अलगाव को त्यागना ही होगा.

अंक की लघुकथाओं के लिए इतना कह देना कि सभी अच्छी हैं, नाकाफ़ी है. आनंद बिल्थरे की लघुकथा 'अजहर' ने पाकिस्तानी मोह से गिरफ़्त लोगों के लिए एक सुंदर और देशभक्तिवाला पाठ पढ़ाया है. अजमल कसाब जैसे भटके लोगों से भयावह कारनामे करा लेनेवालों से अजहर की मां जैसी माताएं ही देश को विघटन से बचा सकती हैं, किसी भी अनहोनी से बचा सकने में समर्थ हो सकती हैं. अपनी दूसरी लघुकथा 'प्रीत का अंजन' में उन्होंने ऐसे भेड़ियों की पोल खोली है जो प्रेम-मुहब्बत का नकली आवरण ओढ़कर कमसिनों को गर्भ के द्वार तक ढकेल देते हैं. वैसे इस विषय पर लघुकथाएं लिखी गयी हैं, पर इस लघुकथा की अंतिम लाइनों का अवलोकन करें तो पता चलेगा कि प्रकृति के द्वारा दिया उपहार स्वरूप यह प्यार कैसे उसी के द्वारा जलील किया जाता है जो प्यार के बड़े-बड़े सपने दिखाकर अपने जाल में फांस लेता है. इसी पैटर्न पर राधेश्याम पाठक की लघुकथा 'मनुहार' भी है जो दंगे के दिनों में फकीर बाबा के न आने पर लोग उनकी सलामती को लेकर बेहद चिंतित हैं और उन्हें आश्वस्त भी करते हैं. आज ऐसे आश्वासनों की बेहद कमी है. जात-पात, ऊंच नीच, अमीर-ग़रीब की खाई पाटने के लिए यह कौमी एकता बहुत मायने रखती है. 'मैं आदमी हूं, आदमी से प्यार करता हूं' का जज्बा जब तक पैदा नहीं होगा, एक अच्छे परिणाम की अपेक्षा करना तब तक बेकार है. वहीं एक गृहस्थिन की 'साधना' को सलाम जिसने अपने पति की सन्यासी अवस्था को स्वीकारकर उसकी राह का रोड़ा न बनते हुए अपने सास-ससुर की सेवा में जीवन अर्पित किया. गौतम बुद्ध, रामायण के रचियता तुलसीदास जैसी महान

विभूतियों को महान बनानेवाली कतिपय उनकी धर्मपत्नियां ही तो थीं. उन तपस्विनियों को सलाम, सलाम 'कथाबिंब' की टीम को भी जिन्होंने ऐसी रचनाएं चयन कर अंक को बेमिसाल बनाने में अपना योगदान दिया. इन रचनाओं का रसास्वादन करते मन थकता ही नहीं है. क्या करें?

कुंवर प्रेमिल

✉ एम. आई. जी./ ८, विजयनगर, जबलपुर (म. प्र.) ४८२००२

❖ 'अंक : १०८ को अगर श्री-श्री १०८ से संबोधित किया जाय तो मेरी समझ से कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी. 'कथाबिंब' आवरण के अनुरूप ही भीतर भी उतनी ही आकर्षक एवं भरी पूरी है कि किसी का भी छक कर गोते लगाने का मन हो आये.

आप भले ही इसे तीन माह के निश्चित अंतराल में प्रकाशित करते हों लेकिन हमें तो यह अंतराल काफ़ी लंबा लगने लगता है अतः मेरा मत इसके मासिक होने के पक्ष में अंकित करें.

श्रीमती नरेंद्र कौर की कहानी 'अपराध बोध' भ्रूण हत्या जैसे ज्वलंत विषय पर लिखी गयी एक परिपक्व रचना है. साथ ही महेश कटारे की 'मुक्ति' पढ़े-लिखे बेरोज़गारों को एक दिशा देने का सफल प्रयास है. कविताएं एवं लघुकथाएं स्तरीय एवं प्रभावी हैं जिसके लिए निश्चित ही संपादक मंडल बधाई का पात्र है.

संजीव निगम जैसे सधे हुए कथाकार से पाठक की कहीं और अधिक अपेक्षा रहती है जो 'कभी कभी मेरे दिल में....' लगता है, रह गयी.

के. पी. सक्सेना 'दूसरे'

✉ शांतिनगर, टाटीबंध, रायपुर-४९२०९९

❖ 'कथाबिंब' का अक्तू-दिसं ०९ अंक मिला, हार्दिक आभार. इस त्रैमासिक पत्रिका की निरंतरता और उत्कृष्टता एक सुखद एहसास देती है और साहित्य के प्रति आपकी लगन व निष्ठा का प्रणाम प्रस्तुत करती है. प्रस्तुत अंक में सुशांत सुप्रिय की 'लौटना' बेहद प्रभावित करती है. ऐसे कथानक को लेखक का लेखन-कौशल्य सफलतापूर्वक एक पठनीय रचना में तब्दील कर देता है. अन्य कहानियां भी कथ्य या शैली के स्तर पर प्रभावशाली हैं. 'कुछ कही, कुछ अनकही' में आपने हमेशा की तरह एक साथ कई समस्याओं व कमज़ोरियों की तरफ इशारा किया. यह भी स्तंभ रोचक और पठनीय है.

कृष्ण सुकुमार

✉ १९३/७, सोलानी कुंज,
भा.प्रौ.सं.रुड़की-२४७६६७

❖ जब से 'कथाबिंब' पत्रिका हमारे घर आंगन में आने लगी तभी से लगा कि किसी अति साहित्यिक पत्रिका से हमारा साक्षात्कार हुआ. उत्तम, अति उत्तम कहानियां हमें इसमें प्राप्त होती हैं और इनकी विशेषता यह है कि इन कहानियों में कोई न कोई संदेश रहता है. लघुकथाओं का तो कहना ही क्या वे तो गागर में सागर ही भर लाती हैं. इसके लिए संपादिका तथा उनके सहयोगी सभी बधाई के पात्र हैं जो इस पत्रिका को अपनी मेहनत से उच्चकोटि की बनाते हैं. इस पत्रिका का संपादकीय वाला पृष्ठ तो रोचकता लिये रहता है. उसमें सभी पक्षों की स्पष्ट व बेवाक राय रहती है और देश की समसायिक घटनाओं पर लेखक की दृष्टि अचूक रहती है. लेखक की सोच एक सच्चे भारतीय, वैज्ञानिक व उच्च साहित्यकार के भी बेहद करीब प्रतीत होती है.

भारत की भूमि पर जन्म लेना
फिर यहीं पर हमने सबने मरना ।।
फिर सच कहने से क्यों डरना
साहित्यकार को सदा निडर ही बनना।।

डॉ. सपना डोभाल

✉ ७ सरस्वती सोनी मार्ग,
मातावाला बाग, देहरादून

❖ 'कथाबिंब' का दिसंबर अंक ०९ पढ़ने को मिला. हमें पत्रिका का तीन महीने तक इंतज़ार करना पड़ता है. हमारे लिए हर अंक मजेदार और शिक्षाप्रद होता है. पत्रिका को हमारे मीनू रेडियो श्रोता क्लब के तमाम सदस्य भी पढ़ते हैं.

इस बार की 'कुछ कही, कुछ अनकही' कुछ ज़्यादा ही हमें पसंद आयी. कहानियों को पुरस्कृत करने की परंपरा अति उत्तम है.

इस बार की कहानियां 'लौटना', 'कभी-कभी मेरे दिल में', 'अपराध बोध', बेहद पसंद आयीं. आमने

सामने में नरेंद्र कौर छाबड़ा की कहानी बड़ी दिलचस्प लगी.

लघुकथाएं 'अजहर', 'मनुहार', साधना' भी पसंद आयीं. इसके साथ ही कविताएं ग़ज़लें भी खूब जमीं.

आपकी पत्रिका इतनी लोकप्रिय होते हुए भी बुक स्टालों पर क्यों नहीं दिखती है? हमारी दुआ है पत्रिका मासिक बने.

बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान'

✉ *गल्लामंडी, गोलाबाजार, गोरखपुर-२७३४०८*

❖ 'कथाबिंब' के ताज़े अंक में गुलज़ार के बाबत पढ़कर पुलकित हो उठा. बधाई! जो रचना मुझे पढ़ने का सुख पहुंचाती है उसके रचनाकार को दो-चार शब्द लिख भेजना मेरी आचार-संहिता है. मैंने सविता जी को पत्र लिखा है.

बता दूं, विगत २८ वर्षों तक मैं 'मनोरमा' के संपादकीय विभाग में था. तब मैंने सविता जी की कुछ रचनाएं छापी थीं. तब भी वे अच्छा लिखती थीं. अब भी शब्द-चित्र प्रस्तुत करने में आप उतनी ही निष्णात हैं जितनी अभिनय कला में. यह मिथ्या प्रशंसा नहीं है. मैं गुलज़ार का फ़ैन हूं, ख़ासतौर पर उनके बाल साहित्य का, उन्होंने बच्चों के लिए बहुत अच्छा लिखा है. बच्चों पर प्यार लुटानेवाला प्रभु के निकटतर होता है. ईश्वर उन्हें चुस्त-दुरुस्त-तंदुरुस्त रखे. उनकी कलम-दावात को मेरा सलाम!

अरविंद जी आप गुण-ग्राहक हैं, तभी तो अंक की सभी रचनाएं एक से बढ़कर एक हैं. मैं चकित हूं, एक विज्ञान वेत्ता होकर साहित्य से इतना अनुराग!

सतीश चंद्र टंडन

✉ ४०, कूचा राय गंगा प्रसाद, कल्याणी देवी,
इलाहाबाद-२११००३

❖ अपने एक साथी के सौजन्य से 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर २००९ अंक पढ़ने को मिला. पहले भी, जब कभी 'कथाबिंब' का कोई अंक कहीं से मिला है, तो मैं उसे आद्योपांत पढ़े बिना नहीं रहा हूं. 'कथाबिंब' का हर अंक कहानियों, लघुकथाओं व गीत-ग़ज़लों का एक सुवासित गुलदस्ता होता है, जिससे कोई भी सुधी पाठक चाहकर भी अपने से दूर नहीं रख सकता.

बहरहाल अद्यतन अंक में भाई सिद्देश्वर की कहानी 'कपवाली आइसक्रीम' और पंकज शर्मा की लघुकथा 'महंगाई' विशेष रूप से अच्छी लगी.

सुप्रसिद्ध पत्रकार-अभिनेत्री सविता बजाज जिनके लेख हम स्कूली जीवन में 'धर्मयुग' में पढ़-पढ़कर हर्षित हुआ करते थे, उनके कॉलम 'बाइस्कोप' ने भी शिद्दत से प्रभावित किया.

संजय कुमार

✉ *'हिंदुस्तान', राम आशा सदन,*
सर्वोदय नगर, पटना-८०००२३.

❖ सुशांत सुप्रिय की कहानी 'लौटना' पारिवारिक प्रेम एवं सौहार्द की अच्छी रचना है उसका शिल्प बहुत प्यारा लगा. संजीव निगम की कहानी 'कभी-कभी मेरे दिल में....' प्यार और त्याग की रचना है. तो महेश जी की 'मुक्ति' शिक्षा और डिग्रियों पर प्रश्न चिन्ह लगाती विद्यमान समस्याओं की सशक्त रचना है और इन सभी के साथ-साथ सुभाष जी की कहानी 'भेड़िए' सबसे अच्छी बहुत सुंदर है, प्रसंशनीय है तो कथा और शिल्प के लिए अतुलनीय भी. नारी विद्रोह, कुरीतियों पर कुठाराघात और स्वातंत्र्य की इतनी सुंदर रचना कि शब्द नहीं रह जाते हैं.

सभी लघुकथाएं अच्छी हैं, लेकिन बहुत ज़्यादा प्रभावित नहीं कर पायीं. बहुत संभव है मेरा आकलन ग़लत रहा हो. कोई भी लघुकथाकार इसे अन्यथा न ले. कविताएं सुंदर हैं. प्रशंसनीय भी साथ ही आपका संपादन यूं ही बना रहे. पत्रिका दीर्घजीवी हो.

डॉ. पूरन सिंह

✉ २४०, बाबा फरीदपुरी, वेस्ट पटेल नगर,
नयी दिल्ली-११०००८

❖ आपके द्वारा संपादित पत्रिका 'कथाबिंब' अपने मित्र श्री यश खन्ना 'नीर' द्वारा अवलोकनार्थ प्राप्त हुई. पहले पत्रिका की छपाई देखकर फिर रचनाएं पढ़कर बहुत प्रभावित हुआ एवं इसका वार्षिक सदस्य बनने पर मजबूर हो गया, और आज आपकी ओर वार्षिक सहयोग धनादेश द्वारा भेज दिया है. 'कभी-कभी मेरे दिल में', 'भेड़िए', 'मुक्ति', 'अपराध बोध' आदि रचनाएं जो अंक में छपी हैं, उनके लेखकों ने मुझे कथाबिंब से भावनात्मक रूप से जोड़ दिया है. लेखकों का आप पूरा पता पत्रिका में छापते हैं. यह बहुत अच्छा करते हैं. इससे पाठक सीधा लेखक से पत्र व्यवहार कर सकता है.

देसराज खुराना

✉ गांव-रतनगढ़, अंबाला शहर,
(हरियाणा)- १३४००३

कहानी

वह कल नहीं आयेगा

हरीसिंह सुपरवाइज़र को क्या पता था कि आज उसका ऐसा हाल होगा? वह फ़ैक्टरी के लंबे चौड़े हाल के किनारे बने कैबिन में बैठा सोच रहा है. उसके सामने लंबे-चौड़े हाल में तरह-तरह की बहुत सारी मशीनें लगी हुई हैं. उन मशीनों में कुछ मशीनें चल रही हैं और बहुत बंद पड़ी हैं. उन पर धूल जम गयी है. जिस प्रकार फ़ैक्टरी चलती थी, अब नहीं चलती. न कोई इंस्पेक्टर है, न फोरमैन, न फिटर, न पढ़े-लिखे अनुभवी ऑपरेटर! एक-एक करके सब चले गये. सबने यहां से नौकरी छोड़ना ही अच्छा समझा. घने जंगल से जिस प्रकार लंबे, मोटे और सीधे पेड़ काट लिये जाते हैं और घना जंगल खाली हो जाता है.... रह जाती हैं झाड़ियां और टेढ़े-मेढ़े खोखले और बूढ़े पेड़. इसी तरह ये फ़ैक्टरी हो गयी है.....

मालिक की ओर से फैक्टरी की कोई हिफ़ाजत नहीं, कोई देखरेख नहीं. यदि कुछ होता भी है तो उपेक्षापूर्ण. सुपरवाइज़र हरीसिंह को क्या पता था कि जब वह बूढ़ा होने लगेगा तो उसके ये हाल होंगे? अनपढ़ और बूढ़े ऑपरेटर - रेहड़ी, ढोनेवाले उनको न माइक्रोमीटर का पता, न वरनीयर का, न हाईट गेज़ का, न कंबीनेशन सेट का? मामूली फुट्टे से कोई पुर्जा मापना हो, तो उस योग्य भी नहीं.... सब कुछ हरीसिंह है, वह क्या-क्या गिनवाये? मशीनों को सेट करे तो हरीसिंह, अनपढ़ कर्मचारियों से माथा मारे तो हरीसिंह! नाप बग़ैरा देखे.... क्वालिटी चेक करे, ख़राबियां देखे तो हरीसिंह! उसकी बूढ़ी होती ज़िंदगी.... ऊपर से यह हाल? उसका जो हाल है.... ऐसे समय में किसी का नहीं होना चाहिए.... उसके ख़्याल पीछे लौट गये..... वहां...जहां से वे चले थे.... अथक परिश्रम किया था. विश्वास हासिल किया था..... स्वयं को नहीं देखा और धोखा खाया.... आज एक घायल पक्षी की भांति वह हो गया है.....

कई दिनों से चर्चा चल रही थी कि 'सी.सी.ग्रुप' के तीन भाई अलग होनेवाले हैं. जो बहुत समझदार लोग थे वे कहते थे कि पूरा शहर जानता है कि 'सी.सी.ग्रुप' का कोई मुकाबला नहीं, आज पूरे देश के मोटर मार्किटों में इस कंपनी का बहुत नाम है और इस कंपनी के बने मोटर-स्पेयर पार्ट्स को लोग हाथों-हाथ ख़रीद लेते हैं. ओरिजनल गाड़ियों में भी इस कंपनी की ही बनी परोपैलर शाफ्ट और एक्सल बग़ैर लगकर आते हैं. इस कंपनी का नाम बिकता है. आज यह कंपनी अरबों में खेल रही है....

लेकिन जब भाइयों के जुदा होने की बात जोर पकड़ने लगी तो कंपनी के छोटे से लेकर बड़े कर्मचारी तक सबके कान खड़े हो गये. भगवान जानता है सुपरवाइज़र हरीसिंह कंपनी का बहुत वफ़ादार था. उसका भी हाल बुरा था. बड़े-बड़े मैनेजरों व एकाउंटेंटों का तो पता नहीं कि वे क्या सोच रहे थे? सुपरवाइज़र हरीसिंह को सब जानते थे, इसलिए उसका पता जल्दी ही सबको लग गया था....

॥ ज्ञान वर्मा ॥

हरीसिंह का हाल इसलिए बुरा था कि वह कंपनी मालिक सभी भाइयों की नज़र में बहुत अच्छा और नेकदिल इंसान था. उसका दिमाग़ कंप्यूटर की भांति तेज़ था. गियर, क्रैंक, क्राऊन और कोई भी कैलकुलेशन वह मिनटों में करके ऑपरेटरों और सेटरों को पकड़ा देता था और जल्दी मशीनें सेट हो जाती थीं. काम में कभी कोई रुकावट नहीं आती थी.

सभी इंस्पेक्टर, ऑपरेटर और फोरमैन उसकी बहुत इज़्ज़त करते थे. वह उनको भी थ्यौरी और नाप बग़ैरा की गूढ़ बातें समझाता रहता था. बहुत कर्मचारी उससे सीखकर अच्छी और तरक्कीवाली नौकरियों में जा चुके थे....

बिजली विभाग के सीनियर इलेक्ट्रिशियन शर्मा ने गियर काटनेवाली हॉबिंग मशीन का क्वाइल बदलते हुए उससे कहा था- ''हरीसिंह जी, आप तो कंपनी

“’’

मालिक सभी भाइयों की नज़रों में बहुत अच्छे हो.... यह तो बताओ कि आप किसकी ओर जायेंगे....?''

शर्मा ने अपनी बात का तीर मारते हुए पेचकश से पेच कसते हुए कहा था. हरीसिंह बोला था - ''शर्मा जी मैं तो परमात्मा पर भरोसा रखता हूं.... सीधी-सी बात है कि मैं यहां.... इस फ़ैक्टरी में काम कर रहा हूं न...! ...यह जिस भाई के हिस्से में आयेगी.... मैं यहीं ....इसी में काम करता रहूंगा....''

'सी.सी.ग्रुप' की अलग-अलग छः फ़ैक्टरियां थीं. छः में अलग-अलग किस्म के मोटर स्पेयर पार्ट्स बनते थे. एक में हर प्रकार के गेयर बनते थे, दूसरी में एक्सल, तीसरी में क्लच प्लेट, चौथी में योक, कपलिंग, करास होल्डर बग़ैरा, पांचवी में प्रत्येक गाड़ी के करास बनाये जाते थे और छठी में परोपैलर शाफ्ट और युनीवर्सल ज्वॉइन्ट बनाये जाते थे. हरीसिंह सुपरवाइज़र वाली फ़ैक्टरी में गेयर बनते थे और ढाई सौ कर्मचारी काम करते थे. काम की हमेशा मारामारी रहती थी....

पहले तो कई दिनों तक कच्ची-पक्की बातें उड़ती रहीं, फिर पक्का पता लग गया कि सबसे बड़ा भाई एक तरफ और दो छोटे भाई इकट्ठे रहकर अपना काम चलायेंगे.... कई दिनों की जद्दो-जहद के बाद इस बात का खुलासा ग्रुप की सभी फ़ैक्टरियों के सामने हो गया था.

बड़े भाई को एक्सल और क्लचप्लेट वाली दो फ़ैक्टरियां हिस्से में आयीं. बाकी चारों फ़ैक्टरियां छोटेवाले दोनों भाइयों के हिस्से में आयीं. हरीसिंह के लिए यह भी ऊपरवाले की कृपा के प्रसाद की भांति था. वह शर्मा बिजली वाले के साथ बोला - ''शर्मा जी, परमात्मा का शुक्र है, जो फैसला मैंने अपने मन में किया था, मैं इस फ़ैक्टरी को छोड़कर और कहीं नहीं जाऊंगा... मेरी पुकार उसने सुन ली है....'' इधर - उधर देखकर उसने कहा - ''सुना है दफ़्तर के एकाउंटेंट, सलाहकार और बड़े मैनेजर इस्तीफ़े दे-देकर अपनी पसंद के भाई के पास जा रहे हैं....? उनको दूसरी ओर से पहले ही ऑफर आ रही थी...?.... पर परमात्मा का शुक्र है कि मेरे साथ ऐसा कुछ नहीं हुआ..... अगर हो जाता तो मेरे लिए बहुत बड़ा धर्म-संकट हो जाता.... बोलकर उसने दीर्घ सांस ली थी.

जिस दिन यह बात हरीसिंह ने की थी, उस दिन

२० दिसंबर १९४३, जिला - मंडी (हि. प्र.); प्रभाकर, साहित्यरत्न

प्रकाशन : दो कहानी संग्रह 'पर्वत बोलते हैं' और 'उसका दु:ख' प्रकाशित.
सन् १९८८ तक देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां व लेख प्रकाशित. इनमें मुख्यत: वीर प्रताप, पंजाब केसरी, हिंदुस्तान, मुक्ता, सुमन सौरभ, सानुबंध, हिमप्रस्थ, ग्रामीण जनता, दैनिक जागरण, नवभारत टाइम्स (बाल-साहित्य में).
सन् १९८८ के बाद बेहद विषम परिस्थितियों से जीवन गुज़रा. उस बीच मात्र तीन-चार रचनाएं 'समरलोक' व 'अक्षर ख़बर' में प्रकाशित.
पूरे अट्ठारह वर्ष बाद 'वह कल नहीं आयेगा' कहानी से पुन: लेखन की शुरुआत.

रुचि : लोकगीत (गायन), चित्रकारी, तथा नाटक देखना.

संप्रति : एक औद्योगिक संस्थान में 'टेक्निकल निरीक्षक' के पद पर कार्यरत.

जब वह घर पहुंचा और कपड़े बग़ैरा बदल के चाय पीने लगा कि उसी समय घंटी बजी थी. उठकर बाहर देखा था - दो व्यक्ति अप-टू-डेट खड़े थे. एक बोला - ''हम अंदर आ सकते हैं...?'' ''क्यों नहीं... आओ आप.... अंदर बैठो....'' उनको कमरे में बिठाकर हरीसिंह दो प्याले चाय के लिए और कह आया था. कमरे में वापस आते ही उन दो में से एक ने कहा - ''हमें आपके पास बड़े बाबू साहब ने भेजा है, इसलिए कि आप दोनों भाइयों की तरफ मत रहो, मेरे पास आओ....''

उन दोनों के लिए भी चाय आ गयी थी. सब चाय पीने लगे थे. लेकिन हरीसिंह के मन में द्वंद्व छिड़ गया था. जिस धर्म-संकट से वह बचना चाहता था, वही

उसके सामने खड़ा हो गया.

कुछ देर चुप्पी रही थी. फिर हरीसिंह ने कहा - "परमात्मा सबका भला करे, मेरे लिए तीनों भाई एक समान हैं. लेकिन मैं सोच चुका हूं - मैं जहां काम कर रहा हूं, करता रहूंगा...."

उन्होंने कहा - "बड़े बाबू साहब ने कहा है कि हरीसिंह को कहना तीस हज़ार तनख़्वाह और आने-जाने के लिए मारुति मिलेगी. बाकी सारी फैसिलिटी जैसे मेडिकल, छुट्टियां, बोनस और पक्की नौकरी की सभी सुविधाएं मिलेंगी."

हरीसिंह को अट्ठारह हज़ार मिल रहे थे. आने-जाने के लिए एक खटारा-सा चेतक था. वह भी उसका अपना था. पक्की नौकरी की सभी सुविधाएं थीं. बड़े भाई ने तीस हज़ार तनख़्वाह, मारुति और सारी सुविधाएं....! इज़्ज़त मान आज रुतवा ही है, उसी की पूछ है... ज़माना एकदम बदल गया है.... बदलती रीत में न जाने क्या कुछ हो रहा है.... अब वह पहले जैसी बातें नहीं रही हैं.... गांव के गंवार तक को बदलते ज़माने की रीत ने पकड़ लिया है... आज पैसा ही सब कुछ है, इसके बाद दिखावा, अच्छे कपड़े, साफ़ सुथरा घर, अच्छा साफ़ कीमती साजो सामान, सोफ़ा सेट, डबलबेड, आधुनिक रसोई, आधुनिक खाना और उसको बनाने का साजो-सामान!.... अच्छी तनख़्वाह.... मारुति और प्रभावित करनेवाला व्यक्तित्व!.... ये सब पैसे की ही देन है..... जो आज है, वह कल नहीं होगा. ... क्या किया जाये....?

उसके मन से आवाज़ आयी - हरीसिंह!.... मूर्ख है.... तुझमें आज कौन-से लाल लग गये... जो बड़ा भाई चुनेगा.... कल तक क्या वह सोया हुआ था...जो आज तीस हज़ार तनख़्वाह और मारुति दे रहा है....? यह बीते कल भी वह दे सकता था..... दफ़्तर के मैनेजर और एकाउंटेंट तीस से लेकर पचास हज़ार तक लेते हैं और सबको मारुतियां, इंडिकाएं वग़ैरा दी हुई हैं.... तू लोहे-लंगड़ में कल-पुर्जे बनाता रहा और खटारा चेतक में शहर की भीड़ में जूझता हुआ बुढ़ापे की ओर अग्रसर है. उस समय क्यों नहीं बड़े बाबू ने तेरी तनख़्वाह बढ़ायी? क्यों नहीं मारुति दी? उस समय वही तो सब भाइयों का और फ़ैक्टरियों का कमांडर था....?

हरीसिंह ने मुंडी हिलायी - आत्मा की आवाज़ उसे परमात्मा की लगी. ... उसने उन दोनों की ओर देखा और बोला था - "परमात्मा सबका भला करे.... मेरे लिए तो सब भाई एक जैसे हैं, आज हमारे लिए बोलियां लग रही हैं.... तरक्की हो या ईनाम... अच्छा वही लगता है कि वह ठीक समय में दिया जाये. फंसे हुए या मुसीबत के मारे का ईनाम नहीं लेना चाहिए...."

उसने उन दोनों को समझाते हुए कहा था - "आप स्वयं सोचो आज बड़े बाबू जी का ईनाम लेकर कल जब सबका हिसाब-किताब, काम वग़ैरा ठीक-ठाक चलने लगेगा, तब ये तरक्की नासूर बन जायेगी... ईर्ष्या का भाव जागेगा ....व्यंग्य किये जायेंगे.... आज समय बहुत बुरा आ गया है, बेरोज़गारी....महंगाई और बढ़ती हुई जनसंख्या....! बहुत ज़्यादा पढ़े लिखे... बहुत ज़्यादा डिग्रीधारक ...बेरोज़गारी.... इस जानलेवा महंगाई से परेशान होकर छोटी नौकरी और कम तनख़्वाह में भी काम कर लेंगे.... उस समय मालिक को हमारी तनख़्वाह चुभेगी. वह सोचेगा - बुरे वक़्त में हमसे ये तनख़्वाह ली थी. फिर आप भली-भांति सोच सकते हैं कि क्या होगा? आप मेरी तरफ से उनको कहना- मैं जहां हूं, वहां ठीक हूं.... मेरे लिए यही ठीक है...."

"अच्छी बात है," उन्होंने कहा था और चले गये थे.

हरीसिंह ने लंबी सांस ली थी, जैसे किसी मुसीबत से जान छूटी हो. उसने मन में कहा था - "परमात्मा, तू जानीजान है, ऐसे मानसिक दर्द से बचाकर रखना, मैंने तो मरी मक्खी का भी विरोध नहीं किया. जीवन की नैया चल जाये इतना ही ठीक!"

हालांकि उसको रात नींद नहीं आयी थी. करवटें बदलते ही रात कट गयी थी. एक मन कहता था कि तूने बुरा किया, आज दुनिया पैसों के लिए अपनों का ही गला घोंट रही है. चारों ओर हाय पैसा! हाय पैसा!! हो रहा है. तूने घर आयी लक्ष्मी को लौटा दिया. यह तूने ठीक नहीं किया. दूसरा मन कहता था- शाब्बास हरीसिंह! खुद्दार हो, तो तुम्हारी तरह! मुसीबत में फंसे व्यक्ति का ईनाम मुसीबतों का कारण बनता है. बड़ा भाई था उस समय सालाना तरक्की भी वही करता था. वही कर्मचारी रखता था और वही निकालता था.... उस समय क्यों नहीं तरक्की दी? बाबुओं को कारें दीं, तुझे कार क्यों नहीं दी? फ़ैक्टरी का मूल अंग

उत्पाद है, और उत्पादन शुरू होता है मशीनों से! मशीनों का तू सरताज था. तुम्हारे जैसे जुझारू व्यक्ति के लिए एक कार कोई मायने नहीं रखती. तब क्यों उपेक्षा हुई? आज वह फंस गया है, टेक्निकल स्टाफ घट गया है. अच्छे और अनुभवी कर्मचारी इस ओर गियर में, टीथ में और पेरोपैलर शाफ्ट में आ गये हैं. बड़ा भाई फंस गया है और चारा डाल रहा है. .... पहले भी उल्टा-सीधा बोल कर जाते थे.... मजबूर व्यक्ति को सहना पड़ता था... लेकिन अब नहीं. जैसे जीवन चलेगा चलायेंगे. लालच में नहीं फंसना... हमसे आदमी सिखवाये जायेंगे, वही सात, आठ और दस हज़ार वाले हमारे पर हावी कराये जायेंगे.... तब हमारी ज़िंदगी हराम! फिर कहां जायेंगे? .... न बाबा न! लालच बुरी बला है.....!

सुबह होते-होते उसको नींद आयी थी.

घंटा भर सोया होगा कि पत्नी ने उठाया- ''चाय पी लो, आज अब तक उठे नहीं, इस समय तक आप उठकर नहा भी लेते हैं.....''

वह हंस पड़ा था - ''परमात्मा तुम्हारा भला करे, तुम्हारा बड़ा सहारा है मेरे जीवन में.... आज रात भर नींद नहीं आयी, इसलिए सुबह आंख नहीं खुली....''

पत्नी गयी तो हरीसिंह उठकर फ़ैक्टरी जाने की तैयारी करने लगा था. आठ बजे अपना पुराना चेतक निकालकर किक मारनेवाला था, कि उसके घर की मुंडेर पर काला कौवा कांव-कांव करने लगा था. हरीसिंह को रोटी का डब्बा पकड़ाती उसकी पत्नी बोली थी- ''जाते हुए कौवा कांव-कांव करने लगा है, कुछ नयी बात होनेवाली है.''

''परमात्मा सबका भले करे, ज़माना ख़राब है, किसी का बुरा न हो....'' कहकर उसने स्कूटर को किक मारी और फिर चला गया था.....

फ़ैक्टरी के गेट के पास पहुंचा तो फ़ैक्टरी मालिक दोनों भाई खड़े थे. सुबह-ही-सुबह इतनी जल्दी क्यों खड़े हैं? उन्हें देखकर हरीसिंह का माथा ठनका था. जो लोग सुबह दस बजे से पहले नहीं उठते, वे भी अरब-पति, वे सुबह इतनी जल्दी फ़ैक्टरी गेट पर खड़े मिलें, यह बहुत हैरानी की बात है....!

उसने स्कूटर खड़ा करके घड़ी में समय देखा - नौ बज रहे थे. उसने दोनों भाइयों को अभिवादन करके पूछा था - ''आप सुबह इतनी जल्दी आये कोई ख़ास काम है....?''

उन्होंने एक नज़र इधर-उधर देखकर हरीसिंह से कहा था - ''अंदर चलो, वहां बैठकर बात करते हैं...''

वे अंदर आकर बैठ गये थे. उन्होंने हरीसिंह को कहा था - ''हम सुबह इसलिए आये हैं कि हमने सोचा हमारे बड़े भाई साहब हमसे बहुत नाराज़ हैं, इसलिए वे हमारे बहुत अनुभवी तथा काम के बारे में हर तरह की जानकारी रखनेवाले कर्मचारियों को मोटी तनख़्वाह का लालच देकर ले जा रहे हैं. यह बात बहुत क्या बहुत ज़्यादा बुरी है. इस तरह नहीं होना चाहिए था.... लेकिन उन्होंने शुरुआत की है, अब हम क्या करें? हमें अपने अनुभवी कर्मचारी रोकने हैं.... यहां आप हमें नज़र आते हैं, आपको पटाने की पूरी कोशिश हो सकती है....''

दोनों भाइयों ने रुककर हरीसिंह के चेहरे पर आने-जाने वाले भावों को पढ़ा था और फिर बोले थे - ''हरीसिंह वैसे तो हम अपनी तरफ से अच्छी तनख़्वाह तथा पूरी सुविधाएं प्रदान करते हैं, फिर भी हम आपसे पूछने आये हैं कि कोई कमी हो तो बताओ...?''

हरीसिंह ने मन में कहा था - ''परमात्मा तू सब जानता है, बुरे समय से बचाना.... मुंह से मांगनेवालों का समय बुरा आ जाता है और फंसे हुए व्यक्ति का ईनाम या पैसा नहीं लेना चाहिए.... आज देगा... कल आंख की किरकिरी बनेगा....''

उसने प्रगट में उनसे कहा था - ''आप अलग हो रहे हो, मन में बहुत सारे विचार आ-जा रहे होंगे. ऐसे समय में सबको भलीभांति सोच-विचार करना चाहिए. आपका मन जब शांत हो जायेगा और जो लोग यहां से वहां और वहां से यहां आ जा रहे हैं, उनका निपटारा तथा फ़ैक्टरी का कार्य सुचारु रूप से चलने लगे, तब आप अवश्य सोचना... मेरी ओर से आप निश्चिंत रहो, मैं जैसे काम करता था, करता रहूंगा...''

सुनकर दोनों भाइयों के चेहरे जैसे खिल उठे थे. पैसे वाले लोगों के खेल इसी प्रकार चलते हैं. उन्होंने उठते हुए पैंतरा बदला था - ''आपके पास जिस चीज़ की कमी होगी, आपको दी जायेगी. इस समय तो हमें यह डर सता रहा है कि कहीं हम सड़क पर न आ जायें. आप हमारा साथ दो, काम और आने-जाने वालों को संभालो. जब ये बादल छट जायेंगे, तब सब

कुछ ठीक होगा.... और ठीक करेंगे.''

यह बोलकर वह अपनी मर्सडीज़ गाड़ी में बैठकर चले गये थे. उसके बाद कुछ दिनों की उलझन, परेशानी, कर्मचारियों का आवागमन, उत्पादन की कमी, फोर्ज़िंग, टर्निंग वग़ैरा की रुकावट! धीरे-धीरे मशीनें चलने की पुनः शुरुआत, काम अपनी जगह आ गया और शेष कोई उलझन नहीं रही.

हरीसिंह ने दिन-रात एक करके उत्पादन तथा मशीनों की ओर अपना पूरा ध्यान दिया. नये आनेवाले ऑपरेटरों को काम के बारे में समझाया. कटर, टूल और सेटिंग की ओर सुबह से लेकर देर रात तक मशीनों में लगे रहे. काम अपनी रफ़्तार से चलने लगा.

लेकिन समय सबके ऊपर आकर चला जाता है. कई झूल जाते हैं, कई निकल जाते हैं, तो कई गिर जाते हैं. फ़ैक्टरी मालिक दोनों भाइयों की किश्ती तूफ़ान लांघ गयी थी. हरीसिंह जैसे कर्मठ और ईमानदार लोगों ने उन्हें साहिल प्रदान करा दिया था. अब वह अपने भव्य दफ़्तर में बैठकर रफ़्तार पकड़ते काम का ब्यौरा काग़ज़ों में देखते. बाकी सब कुछ भूल गये... यह भी कि हमने किसके साथ क्या वायदा किया है? वे मुड़कर फ़ैक्टरी में नहीं आये.... अपने सेल्स और मार्केट मैनेजरों से बात की और काम तथा उसे भेजने का ब्यौरा लिया, फोर्ज़िंग कंट्रोलरों से बात हुई और पूरी तरह चिंता मुक्त होते रहे. काम होता रहा, मशीनें चलती रहीं.... अरबपति मालिक क्यों पीछे मुड़कर देखेगा...?

हरीसिंह सुपरवाइज़र के सिर के बाल सफ़ेद होते रहे. नज़र का चश्मा और मोटा होता गया. फ़ैक्टरी मालिक दोनों भाइयों ने अरबों कमाकर विदेशों में बड़े-बड़े ठेके ले लिये. आसमान को चूमती इमारतों को बनाने में, उन्हें बेचने से अच्छा पैसा कमाया और कारों को बेचने की बड़ी-बड़ी कंपनियां खोल लीं.... फ़ैक्टरियों में कौन माथा मारे? फ़ैक्टरियों में जूझना पड़ता है. तेल, ग्रीस, पैट्रोल, डीजल की प्रॉब्लम. मशीनें ख़राब तो मैंटिनैंस की प्रॉब्लम, फोर्ज़िंग की दिक्कत! एक्साईज, सेल्सटैक्स, कस्टमवालों से परेशानी! इनकम टैक्स, लेबर इंस्पेक्टर, ई. एस. आई. और नगर निगमवालों की हमेशा दखलंदाजी! इसके साथ और कई क़िस्म के लफड़े! आज प्रत्येक मनुष्य यह चाहता है कि मेरा काम हो जाये.... धोखे से हो... लालच देकर हो... रोबदाब

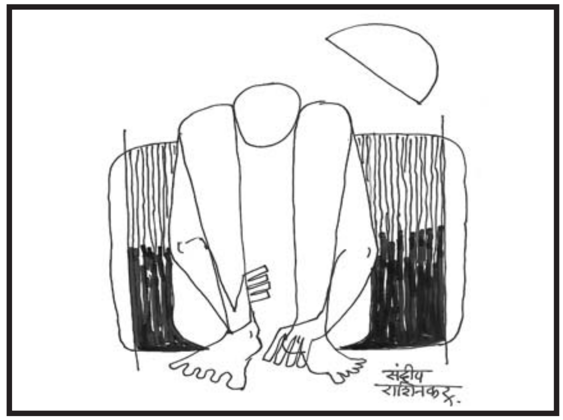

से हो, डरा-धमकाकर हो... होना चाहिए और पैसा मुट्ठी में आना चाहिए.... फ़ैक्टरी मालिक दोनों भाइयों ने भी यही किया था.... हरीसिंह जैसे ईमानदार और मेहनती आदमी तो हमेशा ठगे गये हैं....?

फ़ैक्टरी चलती है... मरी-मरी.... मरे....मरे से बूढ़े कर्मचारी जो अपना पेट पालने के लिए ज़िंदगी से लड़ रहे हैं. मार्केट में अत्याधुनिक सी. एन. सी. कंप्यूटराईज्ड मशीनें आ गयी हैं जिनका उन्हें लेशमात्र भी ज्ञान नहीं. ज़माना तेज़ी से बदल गया. उनके लिए अब कोई जगह नहीं, कोई नौकरी नहीं. वह इस मरे हुए काम में और पुरानी मशीनों में अपनी ज़िंदगी के दिन गुज़ार रहे हैं... जो काम हो जाता है- वह सेल्स में चला जाता है. कुछ उनका भला और कुछ फ़ैक्टरी का ख़र्च निकल जाता है. परंतु कब तक?

यही बात हरीसिंह सुपरवाइज़र सोचता है. वह कब तक इसी तरह काम करता रहेगा? कल जैसा भी था, वह बीत गया है. वह कल नहीं आयेगा. हो गया जो होना था. अब तो ये फ़ैक्टरियां भी बंद हो जायेंगी. इनकी जगह बड़े-बड़े 'माल' बनाये जायेंगे. सब कुछ बदल जायेगा. ज़माना बिलकुल बदल गया है....

उसने लंबी आह भरी. परमात्मा सबका है. वह सबको देख रहा है. वही सबका भला करेगा.... उसने घड़ी में समय देखा... छुट्टी का समय हो रहा था. उसने बाहर निकलकर देखा, दूर आसमान के अंतिम छोर में सूरज बादलों के पीछे डूबनेवाला था.....

'रवींद्र साहित्य कुंज'.
१०३, प्रताप विहार, पार्ट-१, दिल्ली-११००८६.
फ़ोन : ९९५८०२५०६६

कहानी

वादियों का दर्द

बाहर तेज़ बर्फबारी हो रही थी. असद की अम्मी ने लकड़ी की बनी खिड़की से चारों तरफ नज़रें दौड़ायीं तो उन्हें चिनार के दरख़्तों के साथ-साथ सेब के बागान भी बर्फ से नहाये हुए दिखाई दिये. उन्होंने अपने तौर पर कड़ाके की सर्दी और ठंड से बचने के लिए मोटी ऊनी चादर को और भी अच्छी तरह से अपने जिस्म से लपेट लिया. 'या अल्लाह! यह कोई कयामत का दिन तो नहीं....?' सारी रात यों ही बर्फ गिरती रही. हल्की बारिश भी होती रही. रजिया ने सोचा था कि चलो, सुबह सुनहरी धूप खिली होगी. वह असद को कहेगी कि नीचे तराई से भेड़ों और बकरियों को चरा लाये. घर के एक कोने में रखी सारी पत्तियां ख़त्म हो गयी हैं और अब जानवरों को खिलाने के लिए कुछ नहीं बचा है.

अब जो उसने सुबह के मंजर देखे. उसके होश उड़ गये. उसने झुर्रियों से भरे अपने चेहरे पर उभर आयी नमी को महसूस किया. एकाएक खिड़की बंद कर दी. बाहर चारों तरफ उसे ठीक से कुछ दिखाई नहीं दे रहा था. कमरे में लैंप रौशन था. फिर भी उसे एकाएक सब कुछ साफ़-साफ़ नहीं दिखा. उसने कई बार अपनी आंखें बंद कीं, फिर खोलीं तो उसने देखा कि असद बिस्तर में नहीं है. रजिया ने दूसरे-तीसरे कमरे में भी तलाश किया. वह कहीं नहीं मिला. न उसके कदमों की आहट ही कहीं महसूस हुई. उसे बेहद हैरत हुई कि आख़िर इस वक़्त बिस्तर से निकल कर वह कहां गया?

रजिया को महसूस हुआ कि पिछले कुछ दिनों से असद अक्सर बिना कुछ बताये न जाने कहां निकल जाता है? उससे पूछो तो इस तरह देखने लगता है. जैसे उसने यह सवाल करके कोई गुनाह कर दिया हो. बहुत हुआ तो कभी कह दिया- ''अम्मी! हमारे एलाके में भारतीय फौजें रात-दिन कैसे-कैसे तमाशे दिखा रही हैं? क्या सचमुच आपको कुछ नहीं मालूम? जबकि मैं रोज़ ही अख़बार लाकर देता हूं और कभी-कभी सरहद पार से आनेवाले पर्चे भी. ताकि आप भी देख लिया करो. आपको हमारे साथ होनेवाले जुल्म का कुछ तो अंदाजा हो ही जायेगा. इस तरह खामोश रहने से तो एक दिन हमारा वजूद ही ख़त्म हो जायेगा और भारतीय फौजें तब तक यही सब कारनामें अंजाम देती रहेंगी.'' उसकी ये बातें रजिया को अक्सर ठीक से समझ में नहीं आतीं. वह पूछती - ''अरे! तेरा दिमाग तो नहीं फिर गया असद? हमारे बाप-दादा यहीं के थे और यहीं के कब्रिस्तानों में दफ़न हुए, फिर भला हमें कोई क्यों परेशान करेगा? तू नाहक अख़बार पढ़-पढ़कर और सरहद पार की बातें करता है. इंशाअल्लाह! एक न एक दिन सब ठीक हो जायेगा.... सारे हालात मामूल पर आ जायेंगे.... और तब देखना हमारे खेतों और बागानों में कैसी बहार सी आ जायेगी.'' रजिया बेटे को अपने तौर पर यकीन दिलाने की पूरी कोशिश करती. यह देखकर असद को बेहद कोफ़्त महसूस होती. वह अम्मी से बहस करने की बजाये ख़ुद ही चुप्पी साध लेता.

।। डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम' ।।

'ख़ुदा जाने वह किस हाल में होगा. कुछ कहा न सुना. बस घर से निकल पड़ा. जाने सारा-सारा दिन कहां रहता है? ऐसे बुरे मौसम में वह कहां पनाह लेता है. जब तक पहाड़ की चोटियों के पीछे सूर्य की आख़िरी किरण तक सिमट नहीं जाती, वह घर लौटकर नहीं आता.' वह देर तक और भी बहुत कुछ बड़बड़ाती रही, फिर उसे कई एक काम याद आ गये. वह भारी भरकम ऊनी लिबास में ही घर के कामों को निबटाने में जुट गयी.

दोपहर का समय हो चुका था. दूर कहीं किसी मस्जिद से आजान की आवाज़ कानों में पड़ी. उसे एक बार फिर असद का ख़्याल आया. वह अपनी इन कमज़ोर आंखों से उस एक रास्ते पर दूर तक नज़रें दौड़ाने की

कोशिश करने लगी, ताकि कहीं कोई आता हुआ दिख जाये. एक ओर बर्फीली आंधियों ने जहां रास्ते के किनारे खड़े दरख़्तों को सज्दे में डाल दिया था तो दूसरी ओर सर्पीली सड़कें न जाने कहां गुम हो गयी थीं. हर तरफ बर्फ की तह-दर-तह सी जम गयी थी उन सड़कों और रास्तों पर, जिस पर बूढ़ी आंखें टिकने का नाम न लेतीं. वह अपनी चौंधियाती आंखों से तब भी सब कुछ देखने और पहचानने के दावे से कभी पीछे नहीं हटतीं. एक मां बस अपने बेटे के इरादे को नहीं समझ पा रही थी. यही उसकी हैरानी और परेशानी का सबसे बड़ा सबब था.

आख़िर सुबह का सूर्य थका मांदा सा पहाड़ियों के पीछे किरणें समेट आराम करने चल दिया तो असद ने भी घर में कदम रखा. मां ने बेटे की ओर देखा. उसके कपड़े बर्फ की फुहारों से बुरी तरह भींगे हुए थे. उसके हाथों को अपने हाथों में लिया तो रजिया के हाथ भी सुन्न से पड़ गये. ''सारा दिन तू था कहां बेटे? यह तुझे हो क्या गया है? जब न तब बिना कुछ कहे-सुने निकल जाता है घर से? आख़िर अपनी मां को बता तो सही कि तू किस काम में लगा है? तेरी मर्जी क्या है?''

अम्मी ने उसके बर्फीले हाथों को सबब जिस्म में फैलती कंपकपी के बावजूद थामे रखते हुए पूछा. तो उसने अपने को काबू में रखने का भरसक प्रयास करते हुए कुछ उदासी भरे अंदाज में अपने भीतर जमी तल्खी को दबाते हुए बताया -''अम्मी! आपको क्या बताऊं कि हमारे भाइयों और बहनों के साथ हिंदुस्तानी फौजें क्या कर रही हैं? आपका तो कभी कलम किताब से कोई ख़ास रिश्ता ही नहीं रहा. आप सबको अल्लाह का नेक बंदा ही समझती हैं. मगर मैं जानता हूं और मेरे साथी जानते हैं कि यह सच नहीं है. सब छलावा है बिल्कुल छलावा.... हमें किसी न किसी बहाने मिटाने की कोशिशें कर रही है इस मुल्क की हुकूमत. ये हमें पाकिस्तानी जेहादी तो कभी दहशतगर्दी तो कभी किसी और तंजीम यानी आतंकी संगठन का सदस्य कहकर मार डालते हैं और सुन सकेंगी आप? आज के अख़बार की ताज़ा ख़बर यही है कि इस मुल्क के प्रधानमंत्री ने अपने एक बयान में कहा है कि पाकिस्तान से रिश्ते सामान्य करना चाहता है भारत. अब तुम ही बताओ मां दुनिया भर की परेशानियों और मुसीबतों से हम घिरे हैं, जिससे

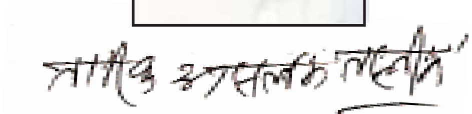

३ अप्रैल १९६२, ग्राम धनगाई, विक्रमगंज (बिहार); बी. एम. बी. एस., चिकित्सा स्नातक, एम. ए. (पत्रकारिता एवं जनसंचार).

लेखन : लेखन एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में सन १९७४ से निरंतर सक्रिय. मूलतः कहानीकार, लघुकथाकार, व्यंग्यकार, कवि, आलोचक. चिकित्सा, मुस्लिम समाज, धर्म, संस्कृति, मनोविज्ञान, बाल मनोविज्ञान, वन-पर्यावरण तथा सामाजिक मुद्दों पर लेखन. अनेक वर्षों तक कई पत्र-पत्रिकाओं के उप संपादक व समीक्षक के रूप में कार्य. अनेक रचनाएं पंजाबी, मगही, अंगिका, निमाड़ी, तथा मराठी भाषा में अनुदित.

कृतियां : 'आदमीनामा', 'सिर उठाते तिनके' व 'प्रतिनिधि लघुकथाएं' (लघुकथा संग्रह), 'शब्द इतिहास नहीं रचते' (काव्य संग्रह), 'स्पॉट लाइट' (मराठी लघुकथा संग्रह), 'ख़ुदा की देन', (मुस्लिम समाज पर केंद्रित देश का प्रथम लघुकथा संग्रह.)

प्रकाश्य : 'परिंदे उड़े गये' (कहानी संग्रह), 'खेल कुर्सी का' (व्यंग्य संग्रह), 'जन्नत' (लघुकथा संग्रह), 'हाशिए का सच' (कविता संग्रह), 'मुस्लिम समाज के बंद दरवाजे' (आलेख संग्रह.)

सम्मान/ पुरस्कार : अखिल भारतीय लघुकथा मंच सम्मान, परमेश्वर गोयल साहित्य सम्मान, मोहसिन काकोरवी साहित्य पुरस्कार. काव्य संग्रह 'शब्द इतिहास नहीं रचते' को राजभाषा विभाग पांडुलिपि प्रकाशन अनुदान प्रदान (बिहार).

संपादन : मासिक 'हमसफर', 'कथा सागर', (मासिक), 'नई शिक्षा संदर्भ' पत्रिका, साप्ताहिक भारतीय राजनीति एवं लोकसत्ता का संपादन-प्रकाशन.

संस्थापक: लेखनी प्रकाशन, भारतीय साहित्य सृजन संस्थान, संजीवनी हेल्थ केयर क्लीनिक.

संप्रति : कार्मिक प्रशासन सुधार तथा राजभाषा विभाग झारखंड सरकार अंतर्गत कार्यरत.

निबटने और हमें बेहतर हिंदुस्तानी शहरी बनने की सहूलतें मुहैया कराने की बजाये हुक्मरानों को लगता है कि वे पड़ोसी मुल्क से रिश्ते सुधार कर सारे बवालों का हल तलाश कर लेंगे? क्या ऐसा हो सकता है अम्मी जान?'' यह कहते हुए असद ने अम्मी के कुछ सवालों के जवाब देने की बजाये उनके सामने सवालों के पहाड़ ही खड़े कर दिये.

रजिया सोच में पड़ गयी. यह एहसास होते ही असद ने एक और धमाकेदार बात कही - ''मैंने कुछ दिन पहले ख़ुद ही अपने एक दोस्त से पूछा था कि क्या यह सच है कि हमारे लोग आतंकवादी कार्रवाइयों के लिए सरहद पार ट्रेनिंग लेने जाते हैं? मेरी बात सुनकर जानती हैं अम्मी जान उसने क्या कहा?''

''क्या कहा उसने मैं भी तो जरा सुनूं.''

''उसने साफ़-साफ़ कहा कि हां, हमारे लोग सरहद पार जाते हैं. अजी! यहां से मुजफ्फराबाद है ही कितनी दूर? बस, घाटियों के पार उतर जाओ... मैं जानना चाहता हूं कि फिर हमारी फौजें उन नवजवानों को क्यों नहीं रोकतीं? जो लोग इधर आना चाहते हैं या उधर जाना चाहते हैं. हमारी फौजें तो वहां मौजूद होती हैं न? मेरे इस सवाल पर जानती हो अम्मी उसने क्या कहा? अरे! यार! यह मुमकिन ही नहीं है. इधर से उधर और उधर इधर आने-जाने के न जाने कितने रास्ते हैं? अभी मेरा फुफेरा भाई ही उधर से कैंप करके लौटा है. ताहिर ने ये सारी बातें हंसते हुए यों कहीं जैसे कोई जोक सुना रहा हो.''

उसकी बातें सुनकर रजिया सोच में पड़ गयी. लेकिन कुछ लम्हों के बाद कहने से नहीं चूकी - ''असद बेटा! मैं तो यही कहूंगी कि इस मुल्क से बेहतर हमारे लिए कोई जगह नहीं, चाहे वह दुनिया की कोई जगह हो. मैं तो यही कहूंगी कि इस मुल्क में रहते हुए हम लोग सच्चे मायने में अपनी बेगुनाही और काबलियत का सबूत दे सकें तो कोई हमारे साथ भेदभाव और नफ़रत नहीं कर सकेगा. आख़िर इतना कुछ होने के बावजूद हमारे लोग काफी ऊंचे ओहदे पर पहुंच ही रहे हैं. मैं यह भी महसूस करती हूं कि हमारे एक मजहबी रहनुमा मौलाना वहीदउद्दीन खां ग़लत नहीं कहते हैं कि दो सौ साल की तारीख़ में किसी एक मुस्लिम रहनुमा ने कभी अपनी ग़लती का खुला एलान नहीं किया. फिर इस लुकाछिपी के खेल से नुकसान किसका हो रहा है? बेटा हमारा ही न? घर भी हमारे उजड़े हैं और चमन भी हमारा ही उजड़ा है और न जाने यह सिलसिला कब तक चलेगा.... ख़ुदा गारत करे ऐसे कमीनों और नमुरादों को जो माओं की कोख़ उजाड़ने की नित नयी योजनाएं बनाते हैं.''

इस बार असद ने अम्मी की ज़ुबान से जो बातें सुनीं उसके दिमाग में बिजलियां सी कौंधी. उसने इस पहलू से कभी गौर ही नहीं किया था सारी बातों पर. वह तो बस यारों की बातों पर ही यकीन करने लगा था कि वह जो कह रहे हैं वही सच्ची बातें हैं बिल्कुल मजहबी किताबों की तरह. तभी रजिया को जैसे कुछ याद आया. वह कहने लगा, ''अच्छा पहले तुम मुंह हाथ धो लो. मैं खाना लाती हूं न जाने सुबह से तुम ने कुछ खाया भी है या नहीं?'' यह अंदेशा जाहिर करते हुए वह एक छोटे से कमरे में दाख़िल हो गयी. जिस जगह को उसने किचन बना रखा था. रजिया एक तश्तरी में असद के लिए तंदूरी रोटियां और सालन ले आयी. असद ने एक टुकड़ा मुंह में डाला तो रजिया उसे फिर समझाने लगी, ''बेटा यह सही है कि कुछ अर्से पहले हमारे पड़ोस के घर में किसी जेहादी की तलाश में फौजें घुसी थीं और घरवालों को बुरी तरह मारापीटा था और औरतों को बेआबरु किया था. मगर यह भी ग़लत नहीं है कि उन लोगों के घरों में जेहादी रातभर रुके थे और खाने-पीने के अलावा जवान लड़कियों की आबरुरेजी भी की थी.... कभी-कभी तो ये हत्यारे लड़कियों को अपने साथ लेकर ग़ायब ही हो जाते हैं... ऐसी न जाने कितनी लड़कियां आज तक अपने घरों को लौटकर नहीं आयीं, यानी हम लोग लुटते-पिटते दोनों ही तरफ से हैं. एक जेहाद के नाम पर हमें शिकार बनाता है तो दूसरा मददगार बनने के एवज में जुल्में ढाहता है. किस्सा तो यही है बेटा.''

''अम्मी जान! क्या आप इस हुकूमत की तरफदारी नहीं कर रही हैं जेहादियों के बहाने?'' असद ने अम्मी की बात को काटते हुए बीच में ही कहा तो वह कहने लगीं - ''यह जो तुम लोग जेहाद-जेहाद की रट लगाये हुए हो. यह जेहाद के मायने नहीं... मेरी समझ से जेहाद का मतलब होता है हर एक बुराई के खिलाफ़ लड़ना, लेकिन ये नवजवान तो मजहब के नाम पर

बुराइयों में ही साझीदार बने हुए हैं. चूंकि इन्हें इस्लाम मजहब का सही अर्थ ही नहीं मालूम है और जो लोग जानते हैं उसे सही तरीके से समाज के सामने रखने की जुर्रत नहीं करते. चूंकि उनका भी समाज के गफ़लत में पड़े रहने में ही फ़ायदा दिखाई देता है. पीर हों या मौलाना सब के सब अपनी दुकानदारी और गद्दी बचाने में लगे हुए हैं. मैं ऐसा यों ही नहीं कह रही हूं. मैं अक्सर मजलिसों में मौलानाओं और सियासतदानों की तकरीरों में सुनती हूं कि इस्लाम मजहब ख़तरे में है. यह सोचना फिजूल सी बात है... बिल्कुल बेबुनियाद है.

हकीकत तो यह है कि इस्लाम न तो कभी ख़तरे में था और न ही आज है. सच तो यह है कि दुनिया भर के मुसलमान ख़ुद अपनी नामसझी और बेवकूफी के सबब ख़ुद ख़तरे में हैं. इसी सोच को कुछ लोग चारों तरफ फैलाकर अपना उल्लू सीधा करने में लगे हैं. मैं दिल से कहती हूं कि जो अपने को जेहादी कहता है वह कम से कम ख़ुदा का नेक बंदा नहीं हो सकता वह शैतान का हमशक्ल हो सकता है क्योंकि मैंने जाना है कि एक शैतान दिखाई नहीं देता जबकि दूसरा इंसानी सूरत में हमारे अंदर बैठा होता है और हमें अक्सर भड़काने की कोशिशों में जुटा रहता है. यही वे लोग हैं जो मजहब और शरियत के ठीक खिलाफ़ जाकर काम कर रहे हैं और पूरी दुनिया में इस्लामी हुकूमत के नाम पर औरतों को तालीम और नौकरियों से निकालकर सिर्फ़ अपनी हवस के लिए फिर से चारदिवारियों के भीतर क़ैद कर देना चाहते हैं. एक बार फिर उन्हें नकाब पहनाकर एक क़ैदी सी ज़िंदगी देना चाहते हैं, लेकिन मैं कहे देती हूं कि यह अब मुमकिन नहीं है बेटा.... किती शर्त पर... जो ख़ुद ग़लत रास्ते पर चल रहा हो वह भला समाज को सही रास्ता कैसे दिखा सकता है?''

अम्मी के ऐसे तेवर उसने अब तक ज़िंदगी में कभी नहीं देखे थे. उसे एहसास हो रहा था कि वह सख़्त ग़लतफहमी में था कि अम्मी जान घर-बार और बागानों में फूलों और फलों की बेहतर खेती के तरीकों के सिवाय कुछ नहीं जानतीं.

अब उसकी हिम्मत अम्मी जान से और बातें करने की नहीं हो रही थी. उन्होंने अपनी उर्म के तकाज़े के लिहाज़ से जिस तजुर्बे को मिसाल के तौर पर पेश किया था यह उसके लिए बिल्कुल नयी बात थी और वह बेतरह चौंक गया था. अब वह मन ही मन सोच रहा था कि उसे इस सच्चाई का इल्म होते हुए कितनी ग़लती पर था. जबकि पिछले दिनों साउथ कश्मीर के शोपियां जिले की एक नहर में दो जवान औरतों की तैरती लाशें पाकर एक बार फिर आशंका व्यक्त की जाने लगी थी कि यह गुनाह फोर्स ने ही अंजाम दिये हैं और इसके बाद फिर घाटी में अशांति फैलती चली गयी थी. क्योंकि एक लाश बाइस साल की नीलोफर की थी और दूसरी उसकी सतरह साल की ननद आसिया की थी. इस मामले को लेकर कश्मीर में हड़ताल के साथ-साथ व्यापक धरना और प्रदर्शन के कार्यक्रम आयोजित किये जाने लगे थे जिसमें उसने भी बढ़चढ़ कर हिस्सा लिया था. लेकिन शोपियां में होनेवाली रैली से पहले ही एक कट्टरपंथी नेता को अरेस्ट कर लिया गया था ताकि शहर के हालात बेकाबू न हों.

असद के दिमाग में अचानक यह बात आयी कि वह यह कैसे भूल गया कि अब यह बात हर तरह से साबित हो चुकी है कि आसिया के साथ बलात्कार नहीं हुआ था. यह जांचने के लिए ही उन दोनों की लाशों को कब्र से निकाला गया था. कहीं ऐसा तो नहीं कि किसी कट्टरपंथी तत्व या तथाकथित जेहादी संगठन के किसी व्यक्ति ने ही ये करतूत अंजाम दी हो? फिर तो वह ग़लत रास्ते पर ही निकल पड़ा था न? जिसके चलते नाहक एक दिन उसको भी अपनी जान गंवानी पड़ती और वह अपने रब के सामने कयामत के रोज़ एक गुनहगार की तरह पेश किया जाता. ख़ुदा ही बचाये ऐसे लोगों से जो गुनहगार की मौत को शहादत का दर्जा देते हैं और पूरी कौम बदनाम होती है. यही सब सोचते हुए वह बिस्तर पर लेट सा गया.

सुबह अम्मी जान ने उसके कमरे में झांका तो पाया कि वह मीठी नींद सो रहा था. यह देखकर रजिया ने बेहद सकून की सांस ली और उसके हाथ दुआ के लिए उठ गये.

लेखनी प्रकाशन-२,
हारुन नगर कॉलोनी, फुलवारी शरीफ,
पटना-८०१५०५,
मो. ९५७६६६१४८०/९५७०१४६८६४

कहानी

समर्पण

अम्मा से वह मेरी अंतिम मुलाकात थी. उसे अंतिम मुलाकात कहना सही नहीं होगा क्योंकि मेरे गांव पहुंचने से पहले ही अम्मा जा चुकी थीं मृत्युलोक से दूर, हर दुःख तकलीफ़ से परे.

पिछली बार जब मैं उनसे मिलने गांव आया था तो उन्होंने कहा था, 'बेटा, बहुत हो गयी है अब मेरी उम्र. पोते-पड़पोते देख लिये, अब ईश्वर का बुलावा आ जाये तो अच्छा है. बिस्तर पर न गिरूं मैं. मोह-ममता नहीं छूटती बस. तुझ में ज़्यादा ध्यान रहता है. तेरा बड़ा भाई मनोहर तो इसी गांव में रहता है. उसके बच्चे ब्याहे गये. तेरे अभी कुंवारे हैं, उनका घर बस जाता तो सुख की सांस लेकर मरती मैं.'

☐

अम्मा से साल में एक बार मिलने के लिए आता हूं मैं. बड़े भाई मनोहर कब के रिटायर हो चुके. अब गली की तरफ तीन दुकानें निकाली हैं उन्होंने. मेरे हिस्से के प्लॉट पर भी मकान बन चुका है. एक हिस्से में मनोहर का बड़ा बेटा सपरिवार रहता है और एक हिस्से में पशुओं के लिए खपरैल डाली गयी है.

कई बार अम्मा कहतीं, 'देव, तू पढ़-लिखकर शहर में इतनी तरक्की कर गया, कोठी बना ली. तेरे बड़े भाई मनोहर का इतना बड़ा टब्बर है. उसके किसी बेटे को ढंग की नौकरी नहीं मिली, दो लड़कों को तो खेती का ही सहारा है. गांव की जायदाद में जो भी तेरा हिस्सा है, मनोहर के नाम कर दे. दुआएं देगा वह.'

थोड़ा भावुक होकर वे कहतीं, 'मनोहर ने हमेशा मेरा ख़्याल रखा है. उसकी बहू सुधा से मेरी कभी नहीं बनी. आज भी मैं अपने हिस्से के मकान में बैठी अपने हाथों से रोटी बनाकर खाती हूं. मगर मनोहर ने हमेशा मेरी तकलीफ़ में साथ दिया है. कभी कुबोल नहीं बोला उसने. कभी-कभी वह तेरे बारे में ज़रूर कसैली बात कह देता है कि तेरी बहू व बच्चे गांव की तरफ नहीं आते या कि देव ने कभी मेरे लिए पैसे भिजवाये या उसका भी फ़र्ज बनता है कि मेरी देखभाल करे.'

अम्मा गीली आंखों से कहतीं, 'अब मैं कुबड़ी हो गयी हूं. घर का राशन मनोहर ही लाकर देता है मुझे. हर महीने अपनी पेंशन में से हज़ार रुपए अलग से देता है मुझे. उसकी पत्नी मना नहीं करती. अब उसकी बहू जैसी भी है मगर मनोहर मेरे दाने-चुग्गे का पूरा इंतज़ाम करता है. तुझसे ख़र्च के लिए क्या कहूं. तू हमेशा ही तंग रहा. कभी मकान की किश्तें तो कभी बच्चों की पढ़ाई का ख़र्च. अब कुछेक सालों से तू मुझे कुछ रुपए देकर जाता है. वे रुपए मैं अपने किरिया-कर्म के लिए जमा करती हूं ताकि मेरे मरने के बाद तुम दोनों भाइयों में तकरार न हो. तू तो बहुत दूर रहता है. मैं कभी सीरियस हो गयी या मर गयी तो सारा बोझ तो मनोहर पर ही पड़ेगा न. देव, मनोहर के बारे में कुछ सोचना बेटे. मेरे जीते-जी पुश्तैनी ज़मीन का निबटारा हो जाये तो ठीक रहेगा.'

।। जसविंदर शर्मा ।।

अम्मा के बार-बार कहने के बावजूद भी पता नहीं क्यों मेरे ख़ून ने कभी जोर नहीं मारा कि मैं अपने हिस्से का मकान व ज़मीन मनोहर के नाम कर दूं. आजकल ज़मीन के रेट बढ़ गये हैं. मैं यहां जोश में आकर कुर्बानी दे जाऊं और मेरी पत्नी मुझे सारी उम्र कोसती रहे.

मनोहर और मेरे बीच आपसी लेन देन की बात कई साल पहले उठी थी. यहां शहर में मैंने किसी तरह जुगाड़ करके तीन सौ ग़ज का प्लॉट ख़रीदा था और उस पर कोठी खड़ी करने के लिए मेरे पास इंतज़ाम नहीं था. जो कर्ज मिल रहा था वह काफ़ी नहीं था कि अच्छा घर बन सके. बच्चों की पढ़ाई के ख़र्च थे. मैं बड़े चाव से गांव आया था कि भाई से पैसे लेकर अपनी कोठी को पूरा कर लूंगा. अम्मा ने सुना तो वह तो बहुत ख़ुश हुईं कि चलो छोटे बेटे का शहर में अपना

ठिकाना बन गया. भाई और भाभी को यह सब अच्छा न लगा. कहने लगे, 'यहां से कोसों दूर मकान बनाने का क्या फ़ायदा. यहां तुम्हारे सारे रिश्तेदार हैं, कुनबा है, टब्बर है. यहां जड़ें हैं तुम्हारी. अनजान बिरादरी में कैसे रहोगे? कल बच्चों की शादी करनी है.'

अगले दिन पता चला कि उनके बिसूरने का असली कारण कुछ और ही था. वे मेरे हिस्से की दबायी हुई ज़मीन से हाथ धोना नहीं चाहते थे. मैंने अम्मा से बात चलायी कि मेरे हिस्से का जो भी बनता है, चाहे थोड़ा कम ही सही, मुझे दिलवा दिया जाये ताकि मैं अपनी कोठी को पूरा करवा सकूं. अम्मा चाहकर भी कुछ फैसला न करवा पायीं.

सुनते ही मनोहर तो बिफर गया. बोला, 'तुझे तो पता ही है कि कितना झंझट है इन ज़मीन के कामों में. सरकारी रिकॉर्ड में हमारी तीनों बहनों और हमारे काकू चाचा के नाम दर्ज हैं. काकू चाचा तो कुंवारा ही मरा मगर उसकी रखैल के घर पैदा हुआ लड़का भी इन ज़मीनों में बराबर का हिस्सेदार है. तू तो शहर में रहता है. सारे कानून जानता होगा. यहां कुछ दिन रुककर पटवारी व तहसीलदार से मिलकर कोशिश कर, शायद ज़मीन हम दोनों भाइयों और अम्मा के नाम हो ही जाये. तभी उसका कोई निबटारा करें. मैं तो एक लड़की की शादी कर चुका. रिटायरमेंट के आधे पैसे तो उसी में लग गये. एक लड़की अभी भी दीवार की तरह सिर पर खड़ी है. मेरे बच्चे भी नौकरी नहीं करते कि उनसे लेकर तुझे पैसे दे दूं. तू तो अफ़सर आदमी है, सौ जगह रसूख हैं तेरे. कहीं से कर्ज लेकर मकान बना ही लेगा. बाकी तेरा हिस्सा अलग निकल आये तो बेच देते हैं.'

मुझे बहुत मुश्किल रास्ता सुझाया गया था. जैसे उस राजकुमार से कहा गया था कि कई मुसीबतें झेलकर किसी भयानक राक्षस को मार गिराये तभी उसकी शादी राजकुमारी के साथ होगी. दो सप्ताह तक मैं वहां टिका रहा. टेनिस की गेंद की तरह इधर से उधर टप्पे खाता रहा. अम्मा तो अशक्त हो चुकी थीं. मनोहर के घर की कमान सुधा भाभी के हाथ में थीं. अम्मा और मनोहर की मजबूरियां साफ़ नज़र आ रही थीं. उनके पास मुझे देने के लिए पांच-सात लाख रुपयों का कोई जुगाड़ नहीं था कि वे मेरा हिस्सा ख़रीद लेते. भाई के पास बैंक में पैसा था मगर सुधा भाभी ने उसे साफ़ मना कर दिया था.

मुझे साफ़ तौर पर बता दिया गया था कि घर तो पुश्तैनी है जिसके एक हिस्से में अम्मा का डेरा था जहां मेरी बहनें व अन्य साझे रिश्तेदार आ कर टिकते थे. अम्मा के जीते-जी वह हिस्सा तो बेचा नहीं जा सकता था. घर के दूसरे बड़े हिस्से में भाई का बड़ा-सा टब्बर रहता था. बस ज़मीन बेचकर उसका तीसरा हिस्सा ले जाने के लिए मुझे कहा गया था और ज़मीन के ग्राहक ढूंढ़ना तो दूर की बात थी पहले उसके काग़ज़ ठीक करवाने में ही बहुत सिरदर्दी थी. पिता जी ने जीते-जी सब कुछ ठीक करवाने की ज़रूरत नहीं समझी थी. उन्हें क्या पता था कि लाखों का रेट होते ही सब की निग़ाहें ज़मीन पर हो जायेंगी.

सात-आठ दिन तहसील-कचहरी के चक्कर काटने के बाद मुझे पता चल गया था कि फौरन ज़मीन बिकने का काम इतनी आसानी से नहीं हो सकता. पहले तो मैं अपनी तीनों बहनों को एक स्थान पर एकत्र करूं. वे मुझसे खासी नाराज़ भी थीं. चाचा काकू के लड़के का कोई पता ठिकाना नहीं मिल रहा था. अपना हिस्सा लेने के लिए शायद मुझे कई महीने लग जाते. उधर ऑफिस से पत्र आ गया कि जल्दी पहुंचो.

जसविंदर शर्मा

१६ दिसंबर १९५८, अंबाला (हरियाणा)

पुरस्कार : साहित्य अकादमी हरियाणा द्वारा पुरस्कृत. सहारा अखिल भारतीय कथा पुरस्कार.

प्रकाशन : तीन व्यंग्य संग्रह, तीन कथा संग्रह (१ उर्दू, १ हिंदी, १ अंग्रेजी में), एक काव्य संग्रह, ताज़ा पुस्तक पेंगुइन द्वारा (नरक यात्रा का सुख) प्रकाशित. एक कथा संग्रह प्रेस में.

संप्रति : भारत सरकार में राजपत्रित अधिकारी.

लघुकथा

महान भारत

✍ नरेंद्रकौर छाबड़ा

कपूर दंपत्ति पिछले सात वर्षों से अमेरिका में रह रहे हैं. कंपनी के प्रॉजेक्ट के लिए वहां गये तो वहीं स्थायी रूप से रहने का निश्चय कर लिया. उनकी आठ वर्षीय इकलौती बेटी कुछ दिनों के लिए भारत अपने दादा-दादी के पास आयी. वे बड़े चाव से उसे रोज़ शहर के दर्शनीय स्थान दिखाते. मित्रों, संबंधियों से मिलाते, सैर सपाटे पर ले जाते. वह बच्ची बड़े कौतूहल से यहां की गतिविधियां देखती फिर प्रश्न पर प्रश्न करती. दादा-दादी अपने तर्कों द्वारा उसे संतुष्ट करने का भरसक प्रयास करते. पंद्रह दिन बाद वह अमेरिका लौट गयी.

स्कूल में जब अध्यापिका को पता लगा कि वह भारत भ्रमण करके आयी है तो उससे कहा भारत आपको कैसा लगा, वहां क्या क्या देखा इस पर एक छोटा सा निबंध लिखकर लाओ. अगले दिन उसने निबंध लिखा- 'मैं भारत गयी तो वहां दादा-दादी ने ख़ूब प्यार किया, ख़ूब घुमाया फिराया, सैर करायी, वहां सड़कों पर गाय भैंसें घूम रही थीं, वहीं गोबर कर रही थीं. कुछ कुत्ते भी मजे से दौड़ रहे थे. वहां के लोग सड़कों पर खड़े होकर चाट पकौड़ी, फल, मूंगफली, भुट्टे खाते हैं और सारा कचरा वहीं फेंक देते हैं. पान खाकर दीवारों पर थूकते भी मैंने देखा. लोग बड़े मजे से सड़क चलते थूकते हैं या पेशाब करते हैं. सबसे बड़ी बात यह कि इन सबको कोई रोकता नहीं, डांटता नहीं, पुलिस भी नहीं पकड़ती, कोई दंड भी नहीं देती. इसलिए मुझे भारत बहुत अच्छा लगा.'

✉ १८४, सिंधी कॉलोनी, जालना रोड, औरंगाबाद-४३१००५

अपना माथा पीटकर थक-हार कर मैं खाली हाथ शहर लौट आया था. अम्मा ख़ुद मनोहर के आसरे थीं, मेरी कोई मदद क्या करतीं या मेरे लिए क्या ज़ोर लगातीं. वह तो शुरू से ही कहती थीं कि मैं अपना हिस्सा मनोहर के नाम कर दूं तो कुनबे में मेरी अच्छी इज़्ज़त बनी रह सकती है. फिर भी आते समय अम्मा ने मुझे आश्वासन दिया था कि वह मनोहर को मनायेंगी कि दोनों भाई जायदाद का बंटवारा कर लें, ज़मीन मनोहर रख ले और देव को अपने हिस्से के पैसे दे दे.

अब अम्मा नहीं रहीं तो ये बातें करनेवाला भी कोई नहीं रहा. अम्मा थीं तो सारा कुनबा आपस में अच्छी तरह जुड़ा हुआ था. कहीं कोई कमी-वेशी या ऊंच-नीच हो जाती तो अम्मा सब कुछ अपने ऊपर ले लेतीं', बेचैन हो उठतीं. इधर-उधर सलाह-चर्चा करतीं और जब तक सब कुछ सामान्य नहीं हो जाता तब तक चैन से कहां बैठती थीं अम्मा.

हर बार मेरे गांव आने पर खिल उठती थीं अम्मा. कहती, 'कुनबे की इस माला में हर जगह बस तेरी ही कमी खलती है. जो पास होता है उसका इतना बिछोह नहीं लगता. तू मेरा छोटा बेटा है न, बहुत याद आता है तू. कई बार तो तेरी शक्ल ही भूल जाती हूं मैं. एक साल का वक़्फ़ा कम नहीं होता रुलाने के लिए. मनोहर तो वट-वृक्ष सरीखा अपने कुनबे में खप गया है. वह घर में सबसे बड़ा है, मुझे हमेशा से ही पक्का प्रौढ़ दिखता रहा है. तेरे पिता के मरने के बाद मनोहर की कद-काठी, नयन नक्श, चेहरा-मोहरा सब तेरे पिता के समान दिखता रहा है. तू छोटा है, बेटा तो बस तू ही दिखता है. तेरा बचपन मेरी आंखों के सामने तैरता रहता है. मेरी मां मुझसे कहा करती थी कि जो बेटा आंखों से जितनी ज़्यादा दूर होता है वह दिल के ज़्यादा करीब होता है. तब ये बातें मेरी समझ में नहीं आती थीं. मेरे कान तेरी आहट सुनने को तरसते रहते हैं. ऐ बड़भागिया! छोड़ आ वह नकली जीवन. यहां की आबोहवा देख. स्वर्ग समान है ये तेरी धरती. हर तरफ अपने लोग. वहां पराये और पत्थर दिल लोगों के बीच में रह-रहकर तू निर्मोही ओर छोटे दिल का बन गया है. सारा ख़ून पतला हो गया है तेरा. अपने कुटुंबवालों को देखकर एक बार भी तेरा ख़ून ठाठें नहीं मारता?

यहीं बस जा. हम भी देखें तेरा रुतबा और तेरा बाग-परिवार.'

इधर अम्मा जब आंखों से बिल्कुल अंधी हो गयीं तब बहुत ही भावुक हो गयी थीं. बात-बात पर आंखें छलछला उठतीं उसकी. मनोहर की बहुत चिंता करतीं. कहतीं, 'तेरी अच्छी पक्की नौकरी है. बच्चे भी अच्छे ओहदों पर हैं. मनोहर के बच्चों के पास ढंग की रोज़ी-रोटी का जुगाड़ नहीं. मिट्टी के साथ मिट्टी होकर घर की ज़रूरत के लिए अन्न उगाते हैं वे. बारिश अच्छी हो जाये तो बल्ले-बल्ले, नहीं तो बाप और उसके बेटे आसमान की तरफ बारिश के लिए ताकते रहते हैं. बहुत कठिन जीवन है उनका. तेरे पास लाखों रुपए हैं, तू यहां की तीन-चार एकड़ ज़मीन का क्या करेगा? मनोहर के नाम कर जा. वह कर रहा था कि पैसों का जुगाड़ होते ही वह तुझे तेरा हक दे देगा. मेरे जीते-जी यह सब निबट जाये तो अच्छा है वर्ना मेरे न रहने पर तुम भाइयों में थाना-कचहरी हो तो मेरी आत्मा को कष्ट होगा. देखता नहीं जरा-सी ज़मीन के पीछे भाइयों में तलवारें तन जाती हैं. मनोहर ने सारी उम्र संभाला है

ेहमान की तरह आता है.'
मैं कुछ भी फैसला नहीं कर
ी ज़मीन का क्या करूं. अब
बाद रो-धोकर, सारे किरिया
र के साथ उसके स्कूटर पर
 लिए रेलगाड़ी लेने पहुंचा हूं.
है, धीर-गंभीर है. कभी सीधे
ी थी उससे मैंने. आज गले
उसका.
ण तू हर साल आता था, अब
नहीं. बहुत सख़्त दिल है तेरा.
मेरा हालचाल फ़ोन पर पूछते
 रहना, मुंह न मोड़ना. अम्मा
ने मरते समय कहा था कि धर्मदेव का हक न मारना. लोन लेकर तेरे लिए पैसों का इंतज़ाम किया है मैंने. ये ले दस लाख का चैक है अपनी पत्नी से चोरी से दे रहा हूं तुझे. तू भी अपने घर पर मत बताना. ये तेरे मेरे बीच का हिसाब-किताब रहा. ज़मीन चाहे मेरे नाम कर या न कर, मेरे बच्चे उस पर काश्त कर हैं, सो तेरा हक तुझे दे रहा हूं ताकि हम दोनों के दिलों में हमेशा भाइयों वाला प्यार बना रहे.'

मनोहर ने जबरन वह चैक मेरी कमीज़ की जेब में ठूंस दिया और मेरे सिर पर हाथ फिराकर आशीर्वाद दिया. गाड़ी धीरे-धीरे सरक रही थी. दूर होता जा रहा मनोहर ऐसा लग रहा था मानो बचपन के मेरे पिता हों जो मुझे शहर के कॉलेज के लिए सुबह-सुबह अपनी साइकिल पर छोड़ने इस स्टेशन पर आते थे. सारी यादें ताज़ा हो उठीं. अब मनोहर ने कर्ज लेकर अपनी हैसियत से बढ़कर मुझे रुपये दिये हैं. पता नहीं कब तक वह इन पैसों की किश्तें चुकाता रहेगा, असल की भी और सूद की भी.

मैं इन रुपयों का क्या करूंगा? बैंक में रखकर ब्याज खाऊंगा या शेयर खरीदूंगा या बीवी के लिए हीरे या क्लब में महंगी शराब पी लूंगा. अम्मा ने असल में ऐसा तो नहीं चाहा था. मनोहर ने ही अंत तक संभाला उसे. मेरे हिस्से की देखभाल भी उसी ने की. मनोहर न होता तो अम्मा रुल जातीं. वक़्त से पहले ही ख़त्म हो जातीं.

मैंने जेब से वह चैक निकाला और उसे फाड़कर चिंदी-चिंदी करके बाहर उड़ा दी और ऊपर आसमान की तरफ देखा. सोचने लगा कि यह देखकर अम्मा की आत्मा को कितनी शांति मिली होगी.

५/२, डी, रेल विहार, मंसादेवी,
पंचकुला-१३४१०९.
फ़ोन : ९८७२४३०७०७

कहानी

खिसकते विराम पर इंतज़ार

बाज़ार के नुक्कड़ पे नज़र मिलते ही कदम सिंह ने सतबीर से पूछ लिया, ''सुणां भई क्या हाल है तेरे....'' जवाब में त्योरियां चढ़ाते हुए उसने आग उगल दी, ''अबे तेरे से हर बात में अच्छे हैं और बोल....'' .... इससे पहले कि वो कुछ कहता सतवीर ने एक जुमला और जड़ दिया, ''....अबे तरी औकाद क्या है जो हमसे पुच्छे (पूछे) कि कैसे हो....'' उसकी आन तान से विस्मित वो मौन उसे देखता रहा. एक क्षण संयत होकर वो उससे उसके उग्र होने की वजह पूछने की बात सोच ही रहा था कि उसके क्रोध ने उसके विवेक को धकिया कर किनारे कर दिया. उसके दिमाग में ख़ून उबल पड़ा, ''अबे तू बता कि तेरी औकाद क्या है... कुत्ते के बीज मैंन्ने (मैंने) तुझसे यही तो पूच्छा कि तेरे हाल क्या हैं कोई गोली तो तुझे न मार दी....''

- अबे हराम के गोली तो कल मैं तेरे घर पर कू मार देता.

- क्या तू मेरे घर पर कू गोली मार देता? अबे मारी क्यों न! कहीं इसलिए तो अक्लमंदी न कर ली कि तुझे अगले की ताकत का ख़्याल आ गया... अपने कुड़बे के निपट जाने का एहसास हो गया होगा...

- तू कुछ ज़्यादाई बकावद (बकवास) कर रया है..

- अबे तो क्या हम भेड़ बकरी हैं जो तू घर भर गोली मार के चला जाता.... हिदायत दे रया हूं किसी के भुलावे में मत न रहियो वर्ना खड़े-खड़े ज़मीन में गाड़ दिया जावेगा समझा....

झगड़े का ओर छोर कहां है ख़ुदा जाने लेकिन अकड़-फूं मुंहजोरी की झपट कटाई से दोनों में आग भड़क गयी. आते-जाते लोग उनके इर्द-गिर्द जमा होने लगे, दुकानदार, फलवाले दुकान छोड़ तमाशा देखने लगे. आग बबूले एक दूसरे को कच्चा चबा जाने के लिए पैंतरे बदलते हुए ललकार उठे, ''बस अब न बचेगा तू.... कदम सिंह आवाज़ दे ले तू अपनी लाश पे रोनेवालों कू....'' वे दोनों लुहार की दुकान की ओर लपके. एक ने कुल्हाड़ी और दूसरे ने लोहे की खंती उठा ली और एक दूसरे पर वार करने के लिए झपटे लेकिन लोहार और आसपास के लोगों ने हिम्मत करके उन्हें पकड़ लिया. उनकी पकड़-छुटाई, गाली-गलौच और चैलेन्जिया ललकार के बीच लोग उनसे मिन्नतें दरामद करते नज़र आ रहे हैं.

''अरे सतवीर पंडित जी गम खाओ!'' - ''कदम सिंह जरा समझदारी से काम लो !!'' - ''लाओ इसे दे दो....'' ''..अरे छोड़ दे मेरे भाई नासमझी में अगर किसी के लग लगा गयी तो पूरी उमर का रोणां हो जावेगा !!!'' - बमुश्किल लोगों ने उन पर काबू पाया. लुहार की जान में जान आयी. हांफता-कांपता कुल्हाड़ी और खंती को दुकान के अंदर फेंक शटर गिरा के दुकान के बाहर खड़ा हो गया, ''अजी कुछ हो जाता तो मैं अंदर हो जाता, पुलिस तो नू केत्ती कि हथियार बुद्धू लोहार ने सप्लाई किये.''

।। अमर स्नेह ।।

बात अभी ख़त्म नहीं हुई थी कि मैं-मैं, तू-तू के बीच भीड़ से कुछ लोग अपना चौधराना हक अदा करने लगे और उनकी पूछ-ताछी के बीच सड़क कचहरी में तब्दील हो गयी- ''क्यों भई कदम सिंह क्या बात हो गयी?'' एक लालाजी पूछने लगे.

- देख्खो जी मुझे तो मालूम न है इस सूरमा कू ख़बर होगी. मैंने तो नू पुछी कि भाई क्या हाल है तो नू कहने लगा कि तेरी हैसियत क्या है जो हमसे हालचाल पूछ रहा है. नू कह रहा था कि ये कल मेरे घर पर कू गोली मार देत्ता कंईए.

पूछा-गाछी के बीच भीड़ से निकल कर प्रधान ठाकुर जिले सिंह आने लगे तो लोगों ने दोनों योद्धाओं के पास पहुंचने के लिए जगह बना दी. ''क्यों भई पंडित सतवीर क्या बात हो गयी?'' प्रधान जी ने तफतीश करने के अंदाज में पूछा.

- परधान आज इससे निपट लेने दें.... बस!

- अरे कोई बात भी होगी पंडित जी जो निपटने-निपटवाने पे तुले पड़े हो, देख्खो जी बे-वजह तो कोई बात होती न....

कुछ अन्य लोग जब यही बात दोहराने लगे तो सतवीर संयत होते हुए बोला, ''बात तो बहुत बड़ी है और कहो तो कुछ भी न है. कल इसके लड़के गुड्डू ने मेरे बालक सोनू कू खेलते-खेलते सड़क पे धक्का दे दिया... अजी सोच्चो जो म्हारा सोनू ट्रक, मोटर, ट्रैक्टर के निच्चे (नीचे) आ जाता तो.... इनके बाप का क्या जात्ता. म्हारा तो घर का चिराग चला जात्ता. - अजी मेरी घर वाली शिकात (शिकायत) कू लेके इसकी घरवाली पे गयी तो उस महारानी ने छूटते नू कह दिया, ''अरे किसी की आयी हो तो उसे कौन रोक सके है. अजी अपने लड़के कू समझाने की बजाय उसने बार-बार येई बात दोहराई और ये कमरे में बैठा सुन रया था.... अब म्हारा इकलौता घर का चिराग मिट जाता तो....?''

प्रधान जी विचारक की मुद्रा में सर खुजलाते सुनते रहे, अचानक उनके मुंह से निकल गया, ''भई कदम सिंह की घरवाली ने बात तो सही कही.... लेकिन ऐसा है... सतवीर ने बात पूरी नहीं होने दी और उसका दिमाग फिर से घूम गया. ''इसकी ने बात सही कही....'', अरे प्रधान वाह - चोर का भाई ठाणेदार - अरे तरफदारी क्यों न करेगा जात का मामला जो ठहरा.''

प्रधान जी और उसके साथ लोगों की त्योरियां तन गयीं, ''अरे सतवीर तू कह क्या रया है कुछ शरम कर.'' सतवीर और खौल गया, ''शरम तो इन प्रधानजी ने (को) आनी चईए (चाहिए) कोन सा कुकर्म छूटा है इससे. लौंडियां इसने भगायीं ... लोगों की ज़मीनें इसने हड़पीं. सड़कों, खड़ंजों, पुलियों का पैसा इसने हड़पा और हमें सिका (सिखा) रया है... वाने बात ठीक कही.''

प्रधान जी की तरफदारी करने के लिए ब्रह्मपाल भीड़ के पीछे से सामने आकर बोला, ''देख पंडित जी तू कूछ ज़्यादा ही बोल रया है.... ये हमारे प्रधान हैं इनका अपमान सहन न होवेगा समझा....'' - प्रधान जी ने भी संभलते हुए तीखी प्रतिक्रिया की, ''कह लेन दे इसे... अरे मैंने परधानी की कोई घास नहीं चरी, अरे मुकदमे कर दे मेरे पे कोई रोक्के है क्या? ख़ैर इसे नू पुच्छो (पूछो) इसका बाप धरमबीरा दूसरी घरवाली कू

अमर स्नेह

लेखन : लगभग तीस वर्षों से देश की स्तरीय पत्र पत्रिकाओं में कहानी, लेख एवं व्यंग्य लेखन. आकाशवाणी और दूरदर्शन के लिए, नाटक, फ़ीचर और टेलीफ़िल्मों का लेखन. रंगमंच के लिए पैंतीस एकांकी एवं पूर्ण अवधि के नाटक. कुछ नाटकों एवं कहानियों का कन्नड़, मराठी एवं अंग्रेजी में अनुवाद.

विशेष : लगभग छत्तीस वर्षों से रंगमंच, फ़िल्म, टेलीविजन और रेडियो पर लेखक, अभिनेता एवं निर्देशक के रूप में सक्रिय, मुंबई की प्रयोगधर्मी नाट्य संस्था थियेट लैब के निर्देशक एवं संस्थापक. हबीब तन्वीर के साथ ''नया थियेटर'' में बरसों कार्य. उत्तर प्रदेश के फ़िल्म एवं नाटक विभाग, भारत सरकार के गीत एवं नाटक विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के दूरदर्शन और एशिया टेलीविजन नेट वर्क, मुंबई में वरिष्ठ निर्देशक के रूप में कार्य. इस बीच विदेशों में फ़िल्म का निर्देशन. सोलह देशों के कलाकारों को लेकर बनी फ़ीचर फ़िल्म 'द सोमालिका दरविशका' पांच विदेशी भाषाओं में बनी यह फ़िल्म अब तक की सबसे बड़ी उपलब्धि. फ़िल्म मेकिंग और अभिनय के शिक्षक के रूप में ख्याति.

संप्रति : रंगाश्रम पॅरेलल फ़िल्म्स एवं टेलेन्ट फाउन्डेशन के निदेशक.

लेके न्यारा क्यों हो गया? अजी इसकी करतूतों की वजह से... अरे मुझे क्या कहना है इसके चाल-चलन से तो दुनिया वाकिफ है... इसे तो चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिए. ये मामला जब पंचायत तक आया तो इसकी गऊ मां ने मेरे गोड्डे पकड़ लिये, कहने लगी अजी प्रधान जी मामले कू ख़त्म करवा दो वर्ना घर की

रई सई इज़्ज़त भी चली जावेगी.''

सतवीर ने प्रधान जी पे हाथ उठाने की कोशिश की लेकिन लोगों ने उसे रोक लिया. प्रधान जी भी क्रोध में बिफर गये, ''अरे तैंने मुझपे हाथ उठाने की जुर्रत की? मुझे पुलिस बुलवाने की ज़रूरत न है... आज तेरा फैसला तो यहीं हो जावेगा.''

प्रधान ठाकुर जिले सिंह की घोषणा ऐलाने-जंग में तब्दील हो गयी. मोबाइल, फ़ोन गांव में खड़कने लगे.

सड़क पर मैं-मैं, तू-तू, बहस मुहाबसों ने अब उग्र रूप धारण कर लिया है. देखते ही देखते ठाकुर जिले सिंह और सतवीर शर्मा के हिमायती, रिश्तेदार और जान पहचान वालों के लड़ाकू दस्ते सड़क-समर पर पहुंच गये. लगता है जैसे ये लोग शक्ति परीक्षण के लिए पहले से ही तैयार बैठे थे. इनके आने के बाद आस-पास के कुछ मुअजिंज लोगों के हस्तकक्षेप से अभी युद्ध पर विराम लगा हुआ है. बीच-बचाव के प्रयासों के चलते फिर से गपड़चौंथ शुरू हो गयी और सारी बातें फिर से दोहराई जाने लगीं.

प्रकाश मेसी भीड़ से साइकिल घसीटता, लोगों के जमघट के पास आकर रुक गया जहां इस वक़्त कचहरी लगी हुई है. वह थका-हारा फ़ैक्ट्री से डबल शिफ़्ट करके लौट रहा था कि भीड़ में फंस गया. बेचैन मेसी ने मजबूरन खड़े-खड़े झगड़े की सारी बातें सुन ली थीं. सहसा उदासीन भाव से वह अपने-आप से बोला, ''ओफ! इस छोटी सी बात को घर पे ही सुलटा लेना चाहिए था सड़क पे जमघट लगाने की क्या ज़रूरत थी....?'' उसका कहना भर था कि पास खड़े सतवीर के एक हिमायती ने उसकी ख़बर ले ली, ''क्यों रे मजिस्ट्रेट की औलाद हमने तेरी राय मांगी क्या?''

इससे पहले कि वह कुछ जवाब देता, कुछ और लोग भी उससे पूछने लगे, ''अरे क्या बात है क्या तकलीफ़ है तुझे!'' पहले वाला ''अति गंभीर होकर बताने लगा, ''अजी ये हरामी नीचका कह रया है कि सड़क पे जमघट लगाने की क्या ज़रूरत थी, इतनी सी बात कू घर पे क्यों न सुलटा लिया.''- ये सुनते ही दोनों पार्टियों के लोग भिर्र-भिर्र करने लगे, जैसे बर्रिया के छत्ते को छेड़ दिया हो, - ''क्यों बे!... अबे हम सब क्या तुझे बेवकूफ लग रहे हैं सारी अकलमंदी धरी रह जावेगी!!''

बातचीत और बहस में व्यवधान उपस्थित होते देख सड़किया कचहरी से आवाज़ आयी, ''अरे यह है कौन जो बेबात दखलंदाजी कर रया है. मेसी के पास खड़े एक ने पहचानते हुए सूचना दी, ''अजी परधान जी ये संतू मेसी का प्रकाश मेसी है डकतो (डकैतों) के गांव का अजी जे बोई (वही) है जिसके पूरे खानदान ने धर्म परिवर्तन करके म्हारे धर्म की ऐसी-तैसी करवा दी.''

अब तो प्रकाश मेसी ने भीड़ में ही साइकिल स्टैंड पे लगा दी और अड़बड़ करने वालों के सामने आकर खड़ा हो गया, ''देखो जी आपने गाली भी दे ली और नीच भी कह दिया, मेरे गांव को डकैतों का गांव भी घोषित कर दिया, धर्म परिवर्तन निजी मामला है उसके लिए भी गुनहगार ठहरा दिया लेकिन अगर में कहूं कि डकैती और कत्ल के इल्जाम में सबसे ज़्यादा केस आप लोगों के गांव में चल रहे हैं. रेप और राहजनी में भी सबसे आगे आपका गांव है तो जनाब ग़लत तो नहीं हूं- चाहो तो पुलिस के रिकॉर्ड देख लो!''

भीड़ में से एक ने मेसी को नीच कमीना कहते हुए गिरेबान पगड़ कर खींच लिया. जवाब में मेसी ने भी गिरेबान छुड़ाते हुए उस पर भरपूर वार कर दिया, ''मैं नीच-कमीना कोख से, जान से, इतिहास से जब था आज नहीं हूं आज मैं इन्सान हूं समझा, एक मारोगे तो मैं दो मारूंगा चाहे अंजाम जो भी हो....''

लगता है इस क्षण लोग अपने-अपने पक्ष की अड़ा-अड़ी भूल कर अब और कहीं केंद्रित हो रहे हैं. मेसी के इस बयान को लोगों ने चेलैन्ज समझ प्रतिक्रिया शुरू कर दी. भीड़ में जैसे आग भड़क गयी, वो लोग अब अपनी रंजिश भूल कर, अपना क्रोध प्रकाश मेसी पर

बोना गन्ना छोड़ दे!

गाफिल स्वामी

बोना गन्ना छोड़ दे, गर मिलता कम रेट ।
या ज़्यादा की सोच मत, कम में भर ले पेट ।।
कम में भरले पेट, व्यर्थ क्यों दिल्ली जाता ।
राजनीति का चक्कर तेरी समझ न आता ।।
'गाफिल स्वामी' कहें - छोड़ दे रोना धोना ।
अच्छा मिले न रेट, बंद कर गन्ना बोना ।।

लालपुर, इगलास,
जिला : अलीगढ़ (उ. प्र.)-२०२१२४.

निकालने लगे. मेसी पर बगछुट प्रहार होने लगे, "मारो साले को जाने न पावे इसने हिंदू धरम का अपमान किया है!" .... "इन सालों को दिन लग रहे हैं!!" ज़िंदा फूंक दो हरामी के पिल्ले को!!!"... "अधर्मी साला कुजात... मारो धरम के दुसमन को!!!!"

कुछ लोगों ने मेसी को बचाने का प्रयास किया लेकिन वे लोग कुछ ही देर में भीड़ के क्रोध से ख़ुद को बचाकर भीड़ से निकल गये. इस बीच कुछ लोग नारे भी लगाने लगे, "गर्व से कहो...." मेसी मार खाता, ख़ुद को बचाता और मारनेवालों से मुकाबला भी करता रहा. अब लोगों ने उसे चारों तरफ से घेर लिया था जैसे शिकार को घेर लेते हैं. लात, घूंसे, पत्थर से उस पर वार होने लगे... उसके नाक और मुंह से ख़ून निकलने लगा. वह बेबस हो चुका था, लेकिन हिम्मत करके उसने साइकिल उठा ली और वार करनेवालों पर फेंक मारी. दो-चार लोग उसकी चपेट में आ गये और ज़मीन पर जा गिरे. इसी बीच कुछ लोग जीप से लाठियां और लोहे की छड़ें निकाल लाये और मेसी पर टूट पड़े. वह उफ भी न कर पाता कि चार-छः लाठियां और छड़ें उस पर पड़ जातीं, उसके नाक, मुंह, सर और आंखों से ख़ून की धार बह निकली. मार खाते-खाते ही उसने हिम्मत करके एक बड़ा पत्थर उठाया लेकिन तभी किसी ने लाठी से प्रहार किया और वो ज़मीन पर बेजान सा गिर पड़ा.

दुकानें बंद करके लोग जहां-तहां निकलने लगे. टेरस और छज्जों के तमाशबीन घरों के अंदर चले गये. धर्म-रक्षक सूरमाओं में से कुछ लोग अपने-अपने जूते, चप्पल, मोबाइल ढूंढ़ने और सहेजने में लगे हुए हैं ताकि कोई निशान न रह जाये. ख़ून से लथपथ मेसी उठता और गिर कर फिर तड़पने लगता, मारने वाले जीप की तरफ भागते-भागते उसे देख कर रुक गये और मंत्रणा करने लगे, "अरे ये तो ज़िंदा है.... लेकिन बचने ना पाये, इसे तो जीप में डालो नदी में फेंक दो"...."अबे अब टेम (टाइम) न है पुलिस आ गयी तो?" ..."अरे पुलिस तो.... वो कोई वी. आई. पी. आ रया है उसके बंदोबस्त में लग रही है. मैं तो कह रया हूं अभी यहां कोई भी न है, इस साले को ख़त्म ही कर दो. बयान हो गये तो सब मुश्किल में आजावेंगे... ख़त्म कर दो, न रहवेगा बांस न बजेगी बांसुरी."

वे लौट कर आये और मेसी पर डंडों और लाठियों से दरिन्दों की तरह टूट पड़े. मेसी ने इस हाल में भी उनसे दया की भीख़ नहीं मांगी. वह उनके सामने गिड़गिड़ाया नहीं, बल्कि पास पड़ी छड़ को उठाने का प्रयास करने लगा. प्रहारियों ने उस तड़पते मेसी पर जम के प्रहार किये और जीप में सवार हो भाग निकले.

मानवीय गरिमा के लिए लड़ता मेसी कितना अकेला था. अब उसका साथ निभाने मौत ही उसके करीब है... अचानक स्कूल से लौटते दो बच्चे एक दूसरे के गले में हाथ डाले उस रास्ते पे निकले तो मेसी को देख स्तब्ध रह गये, "अरे देख-देख लगे है बेचारे का एक्सीडेंट हो गया."...."मुझे तो डर लग रया है चल जल्दी...." पहला बच्चा सहमे-सहमे ही कुछ सोचते हुए, "जल्दी-जल्दी अपने बैग से पानी की बोतल निकाल कर खोलने लगा, "ख़ूनम ख़ून हो गया बेचारा... टी. वी. पे एक दिन दिखाया था चोट लगे तो उसकी मदद करनी चाहिए... पानी पिला दो तो आदमी ज़िंदा हो जावे है...." यह कहते बच्चा मेसी के करीब आ गया... मेसी के मुंह से बुझे-बुझे कुछ स्वर निकले, "रा रा जू."

- न अंकल मेरा नाम गुड्डू है और इसका सोनू.... अंकल बहुत खून जा रया है... लो आप पानी पी लो. अंकल आप ठीक हो जाओगे, हां लो.... - गुड्डू ने मुंह में पानी डाला ही था कि उसकी सांस टूट-टूट कर निकल गयी. बच्चों ने कई आवाज़ें दीं, "अंकल-अंकल!" ... लगे है बेहोश हो गये... चल सोनू जल्दी, यहां तो कोई नज़र भी न आरया.... गांव में ख़बर कर दें, पिताजी गाड़ी में लिवा ले जावेंगे अस्पताल...." बच्चे ने जाते-जाते एक आती हुई गाड़ी को रोकने का प्रयास किया लेकिन वो निकल गयी.

मेसी के जीवन का क़ैमरा उसके प्राणों की रील रनआउट होते-होते, उसके नन्हें बेटे राजू का अंतिम चित्र उसके मस्तिष्क में अंकित कर गया था जिसको वह हर रोज़ इसी वक़्त स्कूल से घर लाने के लिए पहुंचाता था. हां, उसे अभी-अभी कुछ देर पहले उसकी तोतली आवाज़ भी सुनाई दी थी, "पापा तब (कब) आओगे कितनी देल तो हो गयी.... " राजू अभी भी स्कूल के गेट पर पापा के आने का इंतज़ार कर रहा है.

स्नेह फिल्म इंस्टीट्यूट,
पो. गोहर, जिला : मंडी-१७५०२९
मो. ९३१८६०४९९९

तेलुगु कहानी

मुन्नी

सूरज पश्चिम के पहाड़ों के पीछे डूबने की तैयारी में था. आसमान अपने सिंदूरी रंग के आंचल को सुखा रहा था. पूर्व दिशा में तभी पहला सितारा चमकने जा रहा था.

बाली अपने घुटनों के बल आगे झुका और चूल्हे में लकड़ियां ठीक कर दीं. बांस की नली से वह अपने गालों में हवा भरकर फूंक मारने लगा. भीगी लकड़ियां आग पकड़ने में नखरें कर रही थीं. पर सफ़ेद धुआं बाली की आंखों में भरता जा रहा था जिसके कारण आंसू निकल रहे थे. फूंक मार-मारकर थक जाने से वह ज़मीन पर बैठ गया.

''धत् तेरे की. कमबख़्त लकड़ियां भीग गयीं रे!'' उसने गाली दी.

''अरे बाली! चुरुट जलाने के लिए थोड़ी-सी आग दे दे.'' टायलेट की ओर बैठा हुआ वीरू चिल्ला उठा.

''अरे! रुक जा. चूल्हा नहीं जल रहा है, इसलिए मैं परेशान हूं और राजा साहेब को आग की ज़रूरत आ पड़ी.'' अपनी सारी चिढ़ बाली ने अपनी बेरुखी से भरी आवाज़ में जाहिर कर दी.

दूर प्लेटफॉर्म पर बहुत कोलाहल था. स्टेशन पर ट्रेन रुकी हुई थी. उतरनेवाले और चढ़नेवाले यात्री अपने सामान की जांच करके भूली हुई चीज़ों के लिए गाड़ी के अंदर और बाहर भाग-दौड़ कर रहे थे. वह छोटा स्टेशन था. कोई भी गाड़ी वहां ज़्यादा देर नहीं रुकती थी.

रेलगाड़ी के रुकते ही बाली दौड़कर गया और गाड़ी की खिड़कियों के पास भीख मांगने का एक दौर पूरा करके आया. इस बीच चूल्हा बुझ चुका था. उसने मिट्टी के बर्तन का ढक्कन खोलकर देखा. अंदर नीचे चावल के दाने और ऊपर पानी एकदम निश्चल दिख रहे थे. सुबह पी हुई चाय को छोड़कर दिनभर हलक के नीचे उसके पेट में कुछ भी नहीं गया था. उसे ज़ोर से भूख लग रही थी.

मिट्टी के बर्तन के नीचे चूल्हा नहीं जल रहा था. पता नहीं कब तक जलेगा और फिर वह मांड़ कब पी सकेगा?

उसने चारों ओर नज़र दौड़ायी. फेंके हुए कुछ रद्दी काग़ज़ पाने की आशा में इधर-उधर देखा. पर आसपास में उसे ऐसा कुछ भी नज़र नहीं आया.

''कोई भी काग़ज़ का टुकड़ा फेंकने की देर है.... कमबख़्त ये लोग साफ़ करके कूड़ेदान में डाल देते हैं.''

सफ़ाई कर्मचारियों को कोसते हुए वह कूड़ेदान की ओर चला. दायें हाथ से मुट्ठी भर रद्दी काग़ज़ लेकर वह चूल्हे के पास आया. थोड़ी देर पहले ही आयी पानी की हल्की बौछार से उसके हाथ में पकड़े हुए काग़ज़ भी भीगे हुए थे.

चूल्हे से धुआं निकल रहा था. उसी धुएं में उसने काग़ज़ ठूंस दिये और फिर से हवा फूंकने में लग गया. शायद अब की बार आग को उस पर तरस आ गयी. भक से चूल्हा जल उठा. जलते चूल्हे को देखकर बाली का चेहरा दमक उठा.

''यह ठीक है. अब कोई बात नहीं. पांच मिनट में मांड़ बन जायेगा,'' उसने सोचा.

।। के. वरलक्ष्मी ।।

''अरे बाली! आग दे दे,'' वीरू फिर से चिल्ला उठा.

''एक यह रहा मेरी जान खाने के लिए. जैसे ही चूल्हा जलता है, पल-पल आग मांगकर मेरी नाक में दम कर देता है,'' बड़बड़ाते हुए उसने एक छोटी-सी लकड़ी ली और वीरू के लिए चुरुट जलाकर आया.

''मेरा प्यारा बाली! तू कितना अच्छा है रे!'' वीरू ने उसकी प्रशंसा की. उसे याद आया कि सुबह-सुबह चुरुट ख़रीदने के लिए दस पैसे उधार न देने के कारण वीरू ने उसको किस कदर गालियां दी थीं. ''कमबख़्त! मौक़ा देखकर अपना रंग बदल देता है,'' वह बुदबुदाया.

जब से होश संभाला, बाली के लिए यह प्लेटफॉर्म ही घर और आंगन था. यह गांव ही उसका माई-बाप

था. भूख ने उसे केवल मेहनत को छोड़कर बाकी सभी प्रकार की शिक्षा दी थी. जब वह बच्चा था तब उस पर तरस खाकर जो लोग उसे खाना दिया करते थे, बड़ा होने के बाद भी उसने वही पेशा जारी रखा तो वे ही लोग उससे नफ़रत करने लगे. कुछ ने तो उसे समझाने की कोशिश की कि शराफ़त से कुछ न कुछ मेहनत करके पेट पालना ही इज़्ज़त की बात होगी. पर यह शिक्षा उसकी समझ में नहीं आयी. एक-दो बार उसने इसकी कोशिश भी की थी, पर उसके शरीर ने इसे नहीं माना. स्टेशन के अमले ने भी उसे किसी न किसी काम में लगाने का प्रयास किया था. वह अचानक बहरा हो उठा. इसका मतलब यह नहीं कि वह सचमुच बहरा हो गया. बहरापन दिखाई नहीं देता, इसलिए उसने प्रयास किया कि लंगड़ेपन को अपनाया जाये. अपने शरीर को स्वयं ही पीड़ित करना उससे नहीं हो सका. इसलिए वह रोज़ सुबह जागते ही बायें पांव को गट्ठर भर कपड़ों की पट्टी बांध लेता. कहीं-कहीं उस पर लाल रंग लगा देता. हाथ में एक डिब्बा लिये वह लंगड़ाता निकल पड़ता. स्टेशन में यात्रियों से मिले पैसों से बीड़ियां और इडली ख़रीद लेता. जब मन होता कि भात खाये या मांड़ पिये. उस दिन गांव में जाकर भीख मांगकर चावल के दाने ले आता. बिलकुल उदासीन यात्री जब मिलते, तब बिना किसी संकोच के वह जेब काट देता. उसकी किस्मत से चुराये हुए बटुए में ज़्यादा पैसे होते तो चार दिन के लिए भीख मांगने का काम स्थगित करते हुए बिस्कुट और बिरियानी के साथ समय गुज़ार लेता.

स्टेशन पर रुकी हुई गाड़ी सीटी देकर चल पड़ी. अचानक सारी हलचल थम गयी और वहां पर पूरी तरह खामोशी छा गयी. उस स्टेशन पर रुकनेवाली वही आख़िरी गाड़ी थी.

चूल्हे के नीचे लकड़ियों को बाली ने आगे सरकाया. लपट बर्तन को छूने लगी. एकदम ढक्कन को ऊपर उठाते हुए मांड़ उफन उठा. कंधे पर डाले हुए तौलिये से उसने ढक्कन उठाकर बगल में रखा और एक लकड़ी से मांड़ को हिलाया. जेब से नमक की पोटली निकाली और हथेली भर नमक मांड़ में मिला दिया. मिट्टी का बर्तन चूल्हे पर से नीचे उतार दिया और वहां रखे हुए प्लास्टिक के लोटे से थोड़ा-सा पानी लेकर चूल्हे पर छिड़क दिया. लपट बैठ गयी और केवल आग शेष रह गयी.

निकर की जेब में टटोलकर उसने काग़ज़ में लपेटे हुए नमकीन मछली के टुकड़े को संभालकर बाहर निकाला. गीलेपन के कारण उससे चिपका हुआ काग़ज़ पूरी तरह खोले बिना ही उसने मछली का वह टुकड़ा आग में डाल दिया और लकड़ी के टुकड़े से उसे इधर उधर करता रहा. स्टेशन का सारा परिसर सूखी मछली

के. वरलक्ष्मी

२४ अक्तूबर १९५०, स्नातकोत्तर उपाधि (तेलुगु)

लेखन : अब तक ९० से अधिक कहानियां, ४ लघु उपन्यास, अनेक कविताएं, लेख और एकांकी प्रकाशित तथा कई रचनाएं आकाशवाणी और दूरदर्शन से प्रसारित. आपने नारीवाद के किसी सैद्धांतिक पूर्वाग्रह या उहापोह के बिना ज़्यादातर मध्यवर्ग और निर्धन निम्नवर्ग की महिलाओं की समस्याओं का बारीकी से चित्रण किया है तथा विशेषत: ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं के जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रभावी ढंग से उजागर किया है. आपकी कुछ कहानियां हिंदी के अलावा कन्नड़ और अंग्रेजी में अनूदित हैं. तीन कहानी-संग्रह : 'जीवरागम' (जीवन-राग), 'मट्टि-बंगारम' (मिट्टी और सोना) और 'अतडु-नेनु' (वह और मैं) तथा काव्य-संग्रह 'आमे' (वह)

प्रकाशन : प्रकाशित. कुछ कहानियां और कविताएं विभिन्न संग्रहों में सम्मिलित.

पुरस्कार : आपकी कुछ कहानियां प्रतिष्ठात्मक चासो स्फूर्ति पुरस्कार, रंजनी पुरस्कार, अजोविभो (अमेरिका) पुरस्कार, अमेरिकन तेलुगु एसोसिएशन (आटा) पुरस्कार, तेलुगु एसोशिएशन ऑफ नॉर्थ अमेरिका (ताना) पुरस्कार, रंगवल्ली पुरस्कार, पोट्टि श्रीरामुलु तेलुगु विश्वविद्यालय धर्मनिधि पुरस्कार, पुलिकंटि साहिती पुरस्कार, आर.एस.कृष्णमूर्ति आदि अनेक पुरस्कार.

के जलने की गंध से भर उठा. उस गंध के कारण बाली के मुंह में पानी आ रहा था. वह इस इंतज़ार में था कि कब मांड़ ठंडा हो जाये और कब वह साथ-साथ नमकीन मछली का स्वाद लेते हुए उसे पी ले. रोज़-रोज़ तो नमकीन मछली ख़रीदने का अवसर नहीं मिलता. सूखी समुद्री मछली का टुकड़ा एक रुपया खर्च किये बिना मिलेगा नहीं. आम तौर पर बाली के लिए मांड़ के साथ हरी मिर्च का ही सहारा था. कभी-कभी जब उसकी किस्मत इस तरह चमक उठती तब उसे नमकीन मछली खाने का मौक़ा मिल जाता.

''अरे बाली! नमकीन मछली भूनता है क्या?'' नाक से हवा को सूंघकर अनुमान लगाते हुए वीरू ने पूछा. ''तेरे खाने के बाद छोटा कांटा बचे तो मुझे दे देना,'' मुंह में आ रहे पानी का घूंट पीते हुए उसने कहा.

बाली अचानक बहरा हो उठा, ''भीख में मिले सारे पैसे कमर में खोंसकर सबसे मांगता फिरता है कमबख़्त.'' मन ही मन उसने उसे कोसा.

तब तक अंधेरा छा गया था. संडास के पासवाली लाइट की रोशनी वीरू पर पूरी तरह और बाली पर थोड़ी-थोड़ी पड़ रही थी.

''अंधे को क्या दिखेगा?'' यह सोचकर बाली ने अपने दोनों पैर लंबे फैला दिये. उसने अपने पैरों के बीच में मांड़ वाला बर्तन रख लिया और बायें हाथ से नमकीन मछली पकड़कर खाने के लिए आतुर हो उठा. फिर भी उसने एक नज़र बुड्ढ़े पर रहने ही दी. इसलिए कि कहीं वह मांड़ पीने की आवाज़ सुनकर बिना आवाज़ किये पीछे से आकर कह न बैठे, ''थोड़ा-सा मांड़ दे देना बाली रे!''

मिट्टी के बर्तन में नीचे बचे हुए दाने चार कौर भी नहीं खाये होंगे कि उसे ऐसा लगा कि जैसे दूर-दूर रखे उसके पैरों के बीच अचानक एक फुट का कोई आकार उभर आया है. तुरंत उसने अपना सिर उठाया. चौंकने के कारण वह जो मांड़ पी रहा था गले में अटककर उसे खांसी आयी.

रबड़ के खिलौने जैसी एक नन्हीं-सी मुन्नी उसके पांवों के बीच आकर खड़ी हुई थी. उसकी समझ में नहीं आया कि यह सच है या फिर वह कोई सपना देख रहा है. समझने के लिए उसने अपने पांव से उसे छूकर देखा. सचमुच वह एक छोटी-सी, प्यारी-सी मुन्नी ही थी. धुंधली रोशनी में भी उस बच्ची के शरीर का रंग दमक रहा था. शायद उसने रेशमी फ्रॉक पहन रखी थी जो उसके शरीर के रंग के साथ मुकाबला कर रही थी. गले में सोने की चेन, कलाइयों पर दो-दो छोटी-छोटी सोने की चूड़ियां, कानों में झुमके, चार अंगूठियां.... ''अभी तक रेल के इंतज़ार में स्टेशन में बैठे बारातियों की बच्ची है शायद. रेल में चढ़ने की जल्दी और चहल-पहल में वे इसे छोड़कर चले गये होंगे,'' बाली ने सोचा.

उसने अनायास ही चारों ओर नज़र दौड़ायी. इस आशंका के साथ कि उस बच्ची से संबंधित कोई लोग वहां मौजूद तो नहीं हैं. उधर वीरू और इधर उसके सिवा और कोई व्यक्ति वहां पर नहीं था. स्टेशन में भी कोई हलचल नहीं थी. जिन-जिनको बाहर जाना था, वे सब काफ़ी पहले ही जा चुके थे. केवल स्टेशन मास्टर के कमरे में लाइट जल रही थी.

बाली को अपने दिल की धड़कन सुनायी दे रही थी. उसे लग रहा था कि जो रेलगाड़ी जा चुकी थी, वह वापस आकर उसके हृदय में दौड़ रही है. इतनी सारी भूख का क्या हुआ, उसे पता नहीं था. मांड़ गले से नीचे नहीं उतर रहा था. नमकीन मछली का स्वाद बदल गया था. बड़ी मुश्किल से उसने अपने बंद गले से शब्द निकालते हुए पूछा, ''तुम्हारा नाम क्या है मुन्नी जी?'' उस बच्ची के शरीर पर जो सोना दिख रहा था, उसने उसे आदरसूचक संबोधन करने के लिए प्रेरित किया.

''मां,'' मुन्नी ने कहा.

''तुम्हारा नाम..... नाम क्या है?'' उसने पूछा.

''मां,'' मुन्नी ने फिर से कहा.

''यहां यह काहे की झंझट आ पड़ी है रे! यह तो मां... मां कह रही है. शायद बोल नहीं सकती,'' उसने सोचा. हाथ में पकड़ी हुई मछली का टुकड़ा दिखाकर उसने कहा, ''खाओगी?''

मुन्नी ने अपना सिर नकारात्मक ढंग से हिलाया. ग़लती के लिए उसने अपने जूठे हाथ से अपना माथा पीट लिया.

''ऐसे अमीर घर के बच्चे तो बिस्कुट खायेंगे. नमकीन मछली थोड़े ही खाते हैं रे बुद्धू!'' उसने अपने आपको कोसा.

पलभर के लिए उसकी समझ में नहीं आया कि

क्या किया जाये. पहले तो उसे उस बच्ची के शरीर पर जो सोना था, उसे उतार देना होगा.

उसने आहिस्ता-आहिस्ता अपने दोनों पांव एक दूसरे के पास खींच लिये. मांड़ वाला मिट्टी का बर्तन और नमकीन मछली लेकर उसने वीरू को दे दिया. वीरू कुछ पूछने लगा तो उसकी अनसुनी करते हुए फौरन अपनी जगह पर लौट आया. वह अपने लंगड़े पैर की बात ही भूल गया था.

उसने जल्दी-जल्दी मुन्नी के सभी जेवर उतारकर अपनी जेब में डाल लिये. केवल झुमके नहीं उतारे जा सके जो छल्ले के साथ कान से लिपटे हुए थे. उसका मन हुआ कि उन्हें खींच ले. उसे लगा कि ऐसा करने पर वह बच्ची रोयेगी और उसकी आवाज़ सुनकर स्टेशन मास्टर बाहर आ सकता है. "जाने दो. जितना मिला, उतना ही बहुत है. आज नींद से जागकर किसी का सुनहरा चेहरा देखा होगा, तभी तो इतनी किस्मत खुल गयी है. वरना कभी सपने में भी इतना सोना देखा क्या? पता नहीं, बेचने से कितने रुपये मिलेंगे, पर कहते हैं कि सोने का भाव
...वक़्त मां लक्ष्मी ख़ुद ही

...धे पर लगाया. उसकी
...टक से होकर बाहर
...पटरियों के साथ ही
...दूर चला जाये और
...न आये. मौसम ठंडा
...रहे थे. वह बीस-एक
...के कारण उसने पीछे
...हुए मुन्नी उसके पीछे-
...पीछे आया और मुन्नी
...कर कहा, "ऐ तू क्या
...घना अंधेरा है. तू डर
जायेगा. जा, स्टेशन में चला जा. स्टेशन मास्टर साहब तुझे तेरे मां-बाप को सौंप देंगे, जा जा!" पता नहीं मुन्नी उसकी बात समझ गयी या नहीं, पर वह हंसी. अपने दोनों हाथ उसके कंधों पर रखकर उसने यूं देखा मानो कह रही हो कि मुझे गोद में ले लो.

उसके स्पर्श और उसकी दृष्टि से बाली के मन के किसी कोने में कहीं कुछ हिल उठा. एक झटके में उसने मुन्नी को उठाकर गोद में ले लिया. मुन्नी ने उसकी गर्दन को अपने हाथों से लपेटकर आराम से उसके कंधे पर अपना सिर झुका दिया. उस क्षण तक उसको मालूम नहीं था कि नन्हीं बच्ची की छुअन में इतना सुख होता है. पल भर के लिए उसे लगा कि वह इस बच्ची की परवरिश करे तो कैसा रहेगा.

उसे कुछ भी नहीं सूझ रहा था. उसके पास बच्ची को देखकर किसी के भी मन में शक पैदा होगा. सीधे उसे जेल में जाकर बैठना होगा. चलते-चलते ही वह सोच रहा था कि कैसे इस बच्ची से पिंड छुड़ाया जाये? जैसे उसके विचार को भांप लिया हो, मुन्नी ने अपने हाथ और कस लिये.

उसने सोचा, सुना है, बच्चों को ख़रीदनेवाले भी होते हैं. अच्छा होता यह मालूम हो कि ऐसे लोग कहां होंगे. सौ.... नहीं तो हज़ार रुपये अपनी आंखों से वह देख सकेगा. उसे यह भी लगा कि हज़ार रुपये का मतलब शायद रुपयों से एक बोरा भर जायेगा. इतनी-सी कल्पना से ही उसे झुरझुरी सी महसूस हुई. उसने दिमाग़ पर बहुत ज़ोर डाला, पर उसकी कल्पना में यह नहीं आया कि बच्चों को ख़रीदनवाले कहां होते हैं?

ऐसी सारी बातें तो ताड़ी की मड़ई वाली रावुलम्मा ही जानती है. पर वह इस वक़्त वहां जायेगा तो वहां पर सारे के सारे पियक्कड़ जमा हो जाते हैं. यह व्यवहार तो ऐसे सुलटाना होगा कि उसे और रावुलम्मा को छोड़कर किसी तीसरे व्यक्ति को पता तक न चले. उसने तुरंत एक निर्णय कर लिया.

रेल की पटरियों के साथ कुछ दूर पैदल चलकर दायीं ओर झाड़ियों वाले रास्ते की तरफ मुड़ने पर वहां थोड़ी ही दूर पर खंडहर जैसा एक पुराना मकान था. उस रात के लिए वहां पनाह लेने और सुबह होने पर रावुलम्मा से मिलने की उसने सोची.

मुन्नी ने अपने सोने का एहसास कराते हुए उसके कंधे पर अपना सिर झुका लिया. उसकी ऐसी कोई आदत कभी नहीं रही, इसलिए बच्ची को गोद में लेकर चलने से उसे कष्ट हो रहा था. उसका हाथ और कमर दोनों दुख रहे थे. उजड़े हुए उस पुराने मकान के पास पहुंचने पर बाली की सांस फूलने लगी.

उसने सिर उठाकर उस मकान को देखा तो उसे डर लगने लगा. दिन में तो वह इसके पहले कई बार वहां आ चुका था. गिरती दीवारों के बीच उगे हुए तरह-तरह के पौधों और झींगुरों की आवाज़ के साथ वह मकान ऐसे दिख रहा था मानो अपने बाल बिखरायी हुई कोई पागल औरत हो. आगे के कमरे को छोड़कर बाकी सारा मकान ढह चुका था.

आदत के अनुसार वह अंधेरे में टटोलते हुए धीरे-धीरे आंगन की सीढ़ियां चढ़कर आगे के कमरे में पहुंचा. मुन्नी को उसने ज़मीन पर लिटा दिया. अपनी झोली में से मोमबत्ती का टुकड़ा निकालकर नीचे ज़मीन पर रख दिया. फिर अपनी जेब टटोली और उसमें से बीड़ी का टुकड़ा लेकर मुंह में रखा. माचिस की तीली जलाकर उसने पहले मोमबत्ती जलायी और उसी तीली से बीड़ी भी सुलगा ली. ज़मीन पर बैठकर जब तक उसने जी भर बीड़ी के दो कश नहीं खींचे, तब तक उसकी घबराहट कम नहीं हुई. यह सब सपना नहीं बल्कि सच है, यह जतलाने के लिए सामने ज़मीन पर मुन्नी सो रही थी. जब-जब वह अपनी जेब पर हाथ रखता, उसमें रखे हुए जेवर हाथ से लगकर उसे पुलकित कर रहे थे.

मोमबत्ती की लौ हवा के कारण थरथराने लगी. उसने उसे अपने हाथ की आड़ दी. लगता था कि दिनभर वहां पर किसी न किसी ने ताश के पत्ते खेले थे. सिगरेट और बीड़ी के फेंके हुए टुकड़े, शराब के फेंके हुए पाउच बिखरे पड़े थे. आदतन उसका हाथ सिगरेट और बीड़ी के फेंके हुए टुकड़े बटोरकर अपनी झोली में डाल रहा था.

मुन्नी ने नींद में ही करवट बदली. बाली की नज़र मुन्नी के चेहरे पर पड़ी. नन्हें कोमल गालों पर मोमबत्ती की रोशनी पड़कर चमक रही थी. उसे पूर्णिमा का चांद याद आया. सोते हुए ही वह अपना दाहिना अंगूठा अपने गोलाकार मुंह में रखकर चूस रही थी. उस उंगली से मानो दूध निकल रहा हो, ऐसे संतोष के साथ वह घूंट निगल रही थी.

वह उस बच्ची को कुछ देर के लिए अपलक देखता रहा. कोई अनजान अपनापन मन में उभरने लगा तो उसने मुन्नी के गाल पर लगी धूल अपने हाथ से धीरे-से पोंछ दी. उसके पहले उसने अपनी हथेली कुर्ते से रगड़-रगड़कर साफ़ कर ली थी. सोने जैसी इस बच्ची को जो भी ख़रीदेंगे, वे शायद इसकी आंख फोड़कर या टांग तोड़कर इसे भीख मांगने योग्य बनायेंगे..... उसे अपनी पीठ के भीतर ठंड की झुरझुरी महसूस हुई.

''मां!'' मुन्नी ने नींद में मुंह से अपनी उंगली हटाये बिना ही कहा.

बाली को तो जैसे बदन में आग लगी. असल में इस ''मां'' शब्द से ही उसे नफ़रत थी. उसका विचार था कि इतनी सुंदर बच्ची को स्टेशन में छोड़कर रेलगाड़ी में बैठकर गयी हुई उस मां के अंदर मां का दिल नहीं होगा. उसकी अपनी मां भी.... कहीं उसे जन्म देकर और कहीं उसे फेंककर चली गयी थी. जब वह महान माता उसे छोड़कर गयी होगी, तब वह इतना-सा ही रहा होगा. वीरू तो कहता है कि यह औरत जात ही भरोसे लायक नहीं है. यह बात तो सच है!

अचानक मुन्नी जाग उठी और रोने लगी. इधर-उधर करवटें बदलते हुए अपने पांव झाड़ रही थी. उसने ध्यान से देखा तो पाया कि वहां ज़मीन पर चींटियों की कतारें थीं. आतुरता से उसने मुन्नी को अपनी गोद में ले लिया. मुन्नी बेतरह रो रही थी. उसकी समझ में नहीं आया कि क्या किया जाये. तभी उसे याद आया कि शाम से बच्ची ने कुछ भी नहीं खाया था.

''अब क्या होगा? मैं तो ऐसा बेवकूफ हूं कि आते समय एक ब्रेड भी ख़रीदकर नहीं लाया,'' उसने अपने आपको कोसा.

ब्रेड का नाम लेते ही उसे याद आया कि एक सप्ताह पहले एक बार ब्रेड ख़रीदकर उसने बिना खाये ही अपनी झोली में डाल ली थी. उसने ढूंढ़ा तो कपड़ों की गठरी के नीचे ब्रेड मिली. रूखी-सूखी ब्रेड को मसलकर

लघुकथा

स्वतंत्रता

✍ संजय पुरोहित

''आज मैंने समझा, अपने भारत और विदेशी मुल्कों में कितना अंतर है. हम स्वतंत्र हैं, फ्री हैं, जो चाहे करते हैं, यहां विदेश में कितनी पाबंदियां हैं. यहां के लोग आज़ाद होकर भी अपने इंडिया के जैसे आज़ाद नहीं हैं. मेरे जैसा आदमी तो महीने भर यहां रह जाये तो मर ही जाये.''

''वो तो ठीक है, पर बता तो सही आज पहले ही दिन विदेश में तुझे इंडिया इतना ग्रेट कैसे लगने लगा?''

''यार, तुझे मालूम है कि गुटखा खाये बग़ैर मुझसे तो रहा जाता नहीं और मुझे डर था कि यहां विदेश में गुटखा, जर्दा मिलेगा या नहीं इसलिए ख़ूब पाउच अपने साथ लेकर आया था. आज घूमने निकला तो समस्या खड़ी हो गयी. कहां तो पीक थूकूं, कहां पाउच फेंकू? हर वक़्त डर लगा रहा कि कहीं कोई पकड़ न ले, कचरा पात्र भी ऐसे कि मालूम ही नहीं पड़ता.''

''और इंडिया में क्या करता था?''

''इंडिया में? अरे वो तो अपने ख़ुद का मुल्क है, चाहे जहां थूक दिया, पाउच जहां मर्जी फेंक दिया, कोई रोकनेवाला नहीं कोई टोकनेवाला नहीं.''

''अच्छा ये तो बता आख़िर तूने किया क्या?''

''करता क्या, इन फिरंगियों को मन ही मन कोसता रहा, पीक निगलता रहा और गुटखे के पाउच इकट्ठे कर वापस होटल में ले आया. अब तू बता, है या नहीं अपना इंडिया ग्रेट?''

बावरा निवास, समीप सूरसागर, धोबीधोरा, मेजर जेम्स विहार, बीकानेर.

उसने पावडर जैसा बनाया और मुन्नी के मुंह में थोड़ा-सा डाल दिया. मुन्नी ने आहिस्ता-आहिस्ता रोना बंद कर दिया. शायद भूखी थी, सो वह जो खिला रहा था, उसे चबा-चबाकर खा रही थी. इस तरह चार-पांच बार निगलने के बाद वह हिचकियां लेने लगी. कोने में रखे मटके से पुराने प्लास्टिक मग में पानी लेकर बाली ने मुन्नी को पिलाया. थोड़ी देर रोना बंद करके उस टिमटिमाती हुई मोमबत्ती की रोशनी में वह बाली के चेहरे और वहां के माहौल को देखकर फिर से रोने लगी.

उस निशा में मुन्नी का रोदन गूंज रहा था. रात ढल रही थी. बाली को ज़ोर से नींद आ रही थी, किंतु जेब में रखे आभूषण और मुन्नी का रोना उसकी आंखों से नींद को दूर कर रहे थे.

थोड़े-थोड़े अंतराल से वह मुन्नी को पानी पिलाता रहा.

रो-रोकर थकी-मांदी मुन्नी सो गयी.

तड़के किसी समय बाली अनजाने ही नींद के आगोश में चला गया.

गिरी हुई दीवारों के ऊपर से सूरज अपनी तेज़ किरणों के साथ बाली को देख रहा था. सारे शरीर में धूप की गरमी के कारण परेशानी हुई तो बाली जाग उठा. आदतन रेलगाड़ियों की सीटियां, चाय-कॉफी बेचनेवालों की आवाज़ें नहीं सुनाई दीं तो वह पल भरके लिए नहीं समझ पाया कि वह कहां पर है. नींद में थोड़ी दूर तक जाकर पड़ी हुई मुन्नी को देखते ही उसे सब कुछ याद आया. अनायास ही उसका हाथ जेब में रखे जेवरों पर गया. वह उठा और बाहर आकर देखा.

आसपास में कोई हलचल नहीं थी. ''अच्छा हुआ. भगवान की कृपा से नींद टूट गयी. और कुछ देर होती तो सबके सब पत्ते खेलनेवाले आ धमकते!'' उसने सोचा.

पिछली रात उसके मन में पहले आया विचार और बाद में अनायास उस बच्ची पर हुई उसकी सहानुभूति जैसी भावना... यह सब उसे याद आया. एक क्षण के लिए उसने अनुमान लगाया कि दोनों में कौन-सा उसके लिए ज़्यादा अच्छा है. उसे लगा कि पहला ही उसके लिए अधिक फायदेमंद है. ऐसे में बच्ची के पहने हुए जेवरों के साथ-साथ उसे कुछ न कुछ रुपये भी मिलेंगे. अगर दूसरे विचार के अनुसार अनावश्यक रूप से उस पर

दया करके वह इस बच्ची को ले जाकर स्टेशन में सौंप देगा तो वह दोनों ही से हाथ धो बैठेगा. लोग उसे लतियायेंगे, यह कहते हुए कि तूने रात भर बच्ची को कहां छिपा रखा था.

दया, करुणा जैसी कोई भावना मन में न उठे, इसके लिए वह सोच ही रहा था कि इस बच्ची का मुंह नहीं देखना चाहिए. पर इसके बावजूद उसकी दृष्टि उस बच्ची पर पड़ ही गयी. रात को जब वह चींटियों से परेशान होकर रो रही थी तो उसने उसके पहने हुए कपड़े उतार दिये थे, इसलिए सुबह की धूप में उसका शरीर संगमरमर की प्रतिमा की तरह चमक रहा था. वह अपना एक हाथ गाल पर रखकर एक ओर करवट लेकर लेटी हुई थी. पता नहीं, मुंह में रखा हुआ उसका अंगूठा कब का निकल गया था, सो वह थोड़े से खुले हुए ओंठों के बीच अपनी जीभ को अर्धचंद्र के आकार में रखकर रुक-रुककर दूध पीने की अनुभूति प्राप्त कर रही थी.

मुन्नी को वैसे ही उठाकर उसने उसे अपने कंधे पर इस तरह लिटाया कि उसकी नींद न टूटे. झोली में से एक पुराना कपड़ा निकालकर उसने मुन्नी को पूरी तरह ओढ़ाया. गांव में से जाना ठीक नहीं होगा, यह सोचकर उसने खेतों से होकर गांव के दूसरे छोर पर रहनेवाली रावुलम्मा की ताड़ी की मड़ैया की ओर कदम बढ़ाये. मुर्गों के दड़बे के पास बैठकर दातुन कर रही रावुलम्मा ने इतने सबेरे आये हुए बाली को देखकर पूछा, ''क्यों रे बाली! सबेरे-सबेरे ताड़ी पीने तक नौबत आ गयी क्या?''

उसकी बात का कोई जवाब दिये बिना बाली ने अपने कंधे पर से मुन्नी को लेकर बेंच पर धीरे से लिटा दिया. बच्ची को देखकर वह चिल्ला उठी -''अरे नासपीटे कहीं के! इस बच्ची को कहां से उठाकर लाया रे?''

''तुम्हारे पांव पड़ता हूं. ज़ोर से मत चिल्लाना रावुलम्मा जी!'' गिड़गिड़ाने के लहजे में बाली ने कहा, ''यह बच्ची मुझे मिली. लगता है, किन्हीं गुज़ारे के लिए मोहताज लोगों ने परवरिश न कर पाने से इसे छोड़ दिया है शायद.'' उसने सोचा कि बिलकुल विश्वसनीय ढंग से उसने झूठ कह दिया.

''अबे, मुंह बंद कर. खाने के लिए मोहताज लोग बच्ची को इस तरह कानों में झुमके थोड़े ही पहनाते हैं?'' रावुलम्मा ने उसके कानों की ओर अपनी पैनी निग़ाह दौड़ाते हुए कहा, ''आख़िर इस बच्ची को इधर काहे को लाया रे?''

''इसलिए कि कोई ख़रीदनेवाले हों तो इसको बेच दूं....'' सहमते हुए बाली ने कहा. रावुलम्मा ने पल भर के लिए मुन्नी को एकटक देखा. फिर मुंह में से दातुन निकालकर उसने फेंक दी और पानी से कुल्ला करके उसके पास आयी.

''और कोई क्यों? मैं ख़ुद ही पालूंगी. सोने के खिलौने की तरह है यह बच्ची.'' उसने कहा. फिर उसने अपनी कमर में खोंसी हुई छोटी-सी थैली निकालकर उसमें से दस-दस के पांच नोट लिये और उसके हाथ में थमा दिये. फिर भी वह और ताकने लगा तो उसने कहा, ''क्या है रे कमबख़्त! बता दे.''

''तुमने बिलकुल पचास ही दिये. कानों में सोने के झुमके भी हैं न?''

''हां, हैं तो. वे तेरे बाप की अमानत थोड़े हैं?'' रावुलम्मा ने फटकारा.

''ठीक है, यह पचास भी ले.'' उसने एक पचास और उसको दे दिये. मुन्नी की रेशमी फ्रॉक निकालकर बाली ने रावुलम्मा को दी. रावुलम्मा की आंखों में चमक आयी.

''इतने अच्छे कपड़े पहना दिये तो इसका मतलब है कि यह बच्ची ज़रूर अमीरों की बेटी है रे बाली!'' उसने कहा.

''थोड़ी-सी ताड़ी....'' बाली ने अनुनय की.

''सुबह-सुबह अभी तक बोहनी भी नहीं हुई. शाम को दूंगी रे.'' रावुलम्मा ने कहा.

पलभर के लिए उसका मन ललचाया कि रावुलम्मा की दी हुई रकम में से दस रुपये तोड़कर ताड़ी पी ले. पर जाने क्यों उसके दिल ने नहीं माना. सारे पैसे उसने सावधानी से गठरी बांधकर झोली में पुराने कपड़ों के नीचे छिपाकर रख दिये. रावुलम्मा को उसने सावधान किया कि वह अभी इस बच्ची को किसी की नज़र में न पड़ने दे. रावुलम्मा की मड़ैया से आते हुए उसने रास्ते में जेवर भी पुराने कपड़े में लपेटकर झोली में सबसे नीचे रख लिये.

तब उसके दिमाग़ में एक बात कौंध उठी. इस बच्ची के संबंधी वैसे भी वापस आकर उसे ढूंढ़ रहे होंगे. हमेशा स्टेशन में पड़ा रहनेवाला वह अगर वहां पर

नज़र नहीं आयेगा तो सबका शक उसी पर आ जायेगा. उसने और कुछ भी नहीं सोचा. जेवर और पैसे उसने अपने पैर पर लगी पट्टी में रखकर अच्छी तरह से बांध लिये और लंगड़ाता हुआ रेलवे स्टेशन की ओर चल पड़ा.

जब तक बाली पहुंचा, सारे स्टेशन में हलचल मची हुई थी. असल में इतने सबेरे-सबेरे कोई गाड़ी नहीं आनेवाली थी. रोज़ उस समय लगता कि स्टेशन मानो सो रहा हो. पर आज.... बाली की समझ में बात आ गयी.

स्टेशन भर में हड़बड़ाहट के साथ घूम रहे पुलिस के सिपाहियों को देखकर उसका दिल धक से रह गया. अनजाने ही उसका सारा शरीर पसीने से तरबतर हो उठा. अपने डिब्बे को झनझनाना वह भूल ही गया और असमंजस के घूंट पीता खड़ा रह गया. पुलिसवाले वीरू और स्टेशन में ही रहते हुए भीख मांगनेवाले अन्य चार-पांच भिखारियों को लाइन में खड़ा करके कुछ पूछताछ कर रहे थे.

''अरे बेवकूफ! असल में तेरा दिमाग़ भी है क्या?'' बाली ने अपने आपको डांट लिया.

''सीधे आकर पुलिस के हाथों आ गया रे!'' किसी की नज़र में न आकर धीरे से चुपचाप लौट जाने की वह सोच ही रहा था कि एक भिखारी ने पुलिसवालों से कहा, ''वह रहा.... वह रहा बाली. आ गया है.'' फिर वह आवाज़ देने लगा, ''इधर आना रे बाली! इधर... यहां पर .... साहब कुछ पूछना चाहते हैं रे!''

''कहीं किसी ने उसको बच्ची को ले जाते हुए देख तो नहीं लिया था?'' अपने आपको संभालते हुए बाली उस तरफ चला.

वह जगह ठीक यात्रियों के प्रतीक्षालय के सामने थी. तब तक दूसरों से किये हुए प्रश्न ही जैसे प्रश्न पुलिसवाले बाली से भी करने लगे.

''क्या तूने कल शाम को ट्रेन के जाने के बाद किसी छोटी बच्ची को देखा था? उस वक़्त तू कहां था? सारी रात तूं कहां रहा?'' इन प्रश्नों के लिए ''नहीं....नहीं'' में जवाब देते हुए बाली की दृष्टि वेटिंग रूम की चौखट से चिपक गयी.

वहां कुर्सी पर पच्चीस वर्ष से भी कम आयु की एक महिला बैठी हुई थी. बिलकुल मिलती-जुलती शक्ल-सूरत से बाली ने समझ लिया कि वही मुन्नी की मां है. पता नहीं वह कब से रो रही थी, लग तो रहा था कि वह निरंतर अश्रुधारा बहा रही थी. रो-रोकर उसकी आंखें सूज गयी थीं. रात भर न सोने के कारण आंखें लाल हो गयी थीं और आग के फूलों जैसी लग रही थीं. बिखरे बालों और पुछी हुई बिंदी के साथ वह एक पागल औरत की तरह दिख रही थी. पिछले दिन यात्रा के लिए पहनी हुई ज़रीवाली साड़ी पर सिलवटें पड़ गयी थीं और वह आंसुओं से भीग गयी थी. बगल में खड़ा हुआ सूट-बूट पहना हुआ व्यक्ति शायद उस बच्ची का बाप होगा. कंधे पर थपथपाते हुए वह अपनी पत्नी को सांत्वना दे रहा था.

बाली ने उन दोनों को तुरंत पहचान लिया. पिछली शाम स्टेशन में गाड़ी के इंतज़ार में बैठे उन दोनों के पास जाकर उसने अपना डिब्बा झनझनाया था. उसके पांव पर लगी पट्टी और उस पर लगे लाल दागों को घृणा से देखकर गोद में सोयी हुई मुन्नी को अपने सीने से लगाते हुए उस महिला ने उससे कहा था, ''जा....जा.'' उस सज्जन ने अंग्रेजी में पत्नी से कुछ कहा और फिर उसे डांटा- ''इतने हट्टे-कट्टे हो. कुछ काम-वाम नहीं कर सकते क्या?''

यह सुनकर बाली के बदन में जैसे आग लग गयी थी. अपने चारों ओर जमाये हुए उनके सामान और वहां रखे सूटकेसों में से एक अदद को उठाने का उसका मन हुआ. चूल्हे पर मांड़ को रखकर आया था, वरना वह ऐसा करने ही वाला था.

अब उन दोनों को इस हालत में देखते हुए उसे बड़ा संतोष हुआ.

''यहां मैं कुछ पूछ रहा हूं तू इधर-उधर क्या देखता है रे लंगड़े?'' उस निरीक्षक ने अपनी लाठी से उस पर एक जोरदार प्रहार किया. उसके कंधे से झोली छीनकर एक सिपाही ने उसे उलटकर सारी चीज़ें नीचे डाल दीं और अपनी लाठी से टटोलकर देखा. कोई सबूत नहीं मिला, इसलिए सभी के साथ उसको भी छोड़ दिया गया. पर सख़्त हिदायत दी गयी कि स्टेशन से कोई बाहर न जाये.

डिब्बा झनझन हिलाते हुए दिनभर वहीं घूम रहे बाली की आंखें मुन्नी की मां पर ही टिकी हुई थीं और उस पर से हट नहीं रही थीं.

उस दुखद स्थिति में वह 'मां' के पर्याय की तरह लग रही थी.

उस दिन दोपहर और शाम को भी उस महिला ने अन्न-जल को नहीं छुआ. उसे लगा कि उसके रूदन का अब कोई अंत नहीं होगा. उसका पति अनुनय कर रहा था कि चलो, घर चलें. लेकिन वहां से न हटने का मानो उसने संकल्प कर लिया था.

लगातार दो-तीन गाड़ियां आयी थीं, सो उनमें से किसी ट्रेन में कोई उस बच्ची को उठाकर ले गया होगा. मां के लिए मुन्नी का रोना न देख-सह पाने से फिर से वे लोग उसे यहीं पर लाकर छोड़ देंगे, यह कल्पना वह कर रही थी. भले कितना ही मूल्यवान क्यों न था, कमबख़्त सामान गाड़ी में चढ़ाते हुए दोनों ही ने कैसे बच्ची को भुला दिया था, यह बात वह नहीं समझ पा रही थी. गाड़ी के छूटने के बाद काफ़ी देर तक यह बात उनके ध्यान में नहीं आयी थी. जब आयी तब चेन खींचकर गाड़ी रोक दी गयी थी और तमाम डिब्बों में ढूंढ़-ढूंढ़कर निराश होने के बाद वे टैक्सी करके पीछे वापस उसी स्टेशन पर आ गये थे. पिछली रात से ही पुलिसवाले अपनी कोशिश में लगे हुए थे.

शाम हो गयी. अचानक एक ऐसी घटना हुई जिसकी किसी ने कल्पना तक नहीं की थी. स्टेशन की ओर बढ़ी आ रही रेलगाड़ी के सामने मुन्नी की मां दौड़ पड़ी. समय पर उसके पति ने उसे थाम लिया, वरना पहियों के नीचे उसकी देह चकनाचूर हो जाती.

दिनभर उसी महिला को देख रहे बाली की समझ में आ गया कि आख़िर मां क्या होती है. मुन्नी को खोकर वह महिला जितनी व्यथित हो रही थी, उसे खोकर उसकी मां भी उतनी ही व्याकुल हुई होगी, यह सोचकर उसे बहुत संतोष हुआ.

मुन्नी की मां के अंदर बाली अपनी मां को देख रहा था. इतने बरसों तक वह जिस 'मां' शब्द से घृणा करता रहा वह अब उसे अत्यंत मधुर लग रहा था.

वापसी यात्रा के लिए मुन्नी के डैडी ने जो टैक्सी तय कर रखी थी, वह स्टेशन के बाहर खड़ी थी. वह अपनी पत्नी को अब भी समझा रहा था.

पटरियों के उस पार वेटिंग रूम के सामने अपने सिर के नीचे रखी झोली के साथ लेटा हुआ बाली सहसा एक निर्णय पर पहुंचा और उठ खड़ा हुआ.

पुलिस की नज़र बचाकर वह खेतों से होकर रावुलम्मा की ताड़ी की दुकान के पास पहुंच गया. तभी अपनी दुकान बंद करके सब कुछ समेटती हुई रावुलम्मा ने कहा, "आ गया न बाली! तेरे जाने के बाद बच्ची उठ गयी और मां.... मां करके लगातार रोती रही. दूध भी नहीं पिया उसने. इधर दुकान और उधर बच्ची को संभालना बहुत मुश्किल हो गया. फिर मैंने थोड़ी-सी अफ़ीम खिलाकर उसको सुला दिया. वरना सभी लोग पूछते न कि यह 'बच्ची' कौन है... आ जा. तेरे को ताड़ी दे दूंगी."

वह यह सब कह ही रही थी कि उसने देखा कि बाली मुन्नी को कंधे पर लिटाकर बाहर जा रहा था. दस-दस के दसों नोट रावुलम्मा पर फेंककर वह दौड़ने लगा. रावुलम्मा आवाक होकर उसे देखती खड़ी रह गयी. अंधेरे में खेत की मेड़ से सड़क पर चढ़ते हुए उसका पैर फिसल गया और वह औंधे मुंह गिर पड़ा. अनायास ही उसके ओंठों से निकला- "मां!" पर इस तरह गिरने में वह यूं संभल गया कि मुन्नी को कोई चोट न लगे.

उस आघात से मुन्नी जाग उठी और रोने लगी. पट्टी बंधे हुए उसके पैर में कहीं कुछ टीस हो उठी. पैर ऊपर उठाना उसके लिए कठिन हो गया.

"मत रो बच्ची.... मेरी प्यारी मुन्नी.... मेरी अच्छी बच्ची...." बाली यूं कह रहा था मानो नींद में बुदबुदा रहा हो. उसकी आंखों के सामने उस मां का रूप झूल रहा था जो अपनी संतान की ख़ातिर मृत्यु के लिए भी तैयार हो गयी थी और एक ज़िंदा लाश की तरह बन गयी थी. उस मां के प्रेम से यह बच्ची दूर नहीं होनी चाहिए. मां के प्यार से वंचित जीवन कैसा होता है, यह वह अच्छी तरह जानता है.

दूर स्टेशन के फाटक से एक टैक्सी बाहर आ रही थी. मुन्नी को धीरे से सड़क पर धकियाकर बाली अपने टूटे पैर को घसीटते हुए सड़क के नीचे पाइप में रेंगता हुआ चला गया. उसके कान और मन सड़क पर ही केंद्रित हो गये थे. उस नीरवता में मुन्नी का हल्का-सा रोना सुनाई दे रहा था.

टैक्सी की गति धीमी हो गयी और वह धीरे-से रुकी. दरवाज़ा खोलने की आवाज़ हुई.

"मुन्नी!" चीख़ते हुए उस मां ने अपनी बच्ची को सीने

कविता

मैं अक्सर हैरान होता हूं !

पंकज शर्मा

जब मैं सुबह को
घर से निकला
शाम को वापिस
घर जाता हूं
और ख़ुद को
ज़िंदा पाता हूं
मैं अक्सर
हैरान होता हूं.
दो-पहिया,
चौ-पहिया गाड़ी
कोई भी टक्कर
दे सकती है
और नहीं तो
कोई इमारत
अपने ऊपर
ढह सकती है,
कोई भी आकर
मार दे गोली,
कहीं भी कोई
बम फट जाये,
कभी भी दंगा
हो सकता है,
कहीं भी पंगा
हो सकता है.
फिर भी ज़िंदा
रह पाता हूं
मैं अक्सर
हैरान होता हूं.
हार्ट फेल हो
जाये तो क्या?
सांस कहीं घुट
जाये तो क्या?
रेल के नीचे
आ जाऊं तो
पुल से नीचे
गिर जाऊं तो
कहीं गटर में
डुबकी ले लूं,
मार पुलिस की
कहीं पे झेलूं,
आग-पानी से
घिर सकता हूं,
गड्ढे-कुएं में
गिर सकता हूं,
पर ख़ुद को
ज़िंदा पाता हूं,
मैं अक्सर
हैरान होता हूं,
मरने की तो
अनगिनत वजहें हैं
और बचने की
कोई नहीं है,
फिर भी ज़िंदा
देख के ख़ुद को
मैं अक्सर
हैरान होता हूं.

प्लाट नं. १९, सैनिक विहार,
सामने विकास पब्लिक स्कूल जंडली, अंबाला शहर (हरि)-१३४००२

से लगाया होगा, इस बात की कल्पना बाली कर रहा था. उसने उस मां के चेहरे पर अपनी बच्ची को वापस पाने का आनंद देखना चाहा. पर वह जानता था कि ऐसा करना उसके लिए संभव नहीं है. अब तक शायद मुन्नी को हृदय से लगाकर वह मां उस पर चुंबन की वर्षा करते हुए ख़ुशी के आंसुओं से उसको भिगो रही होगी. अतीत में बीस साल पीछे जाकर अपनी मां की गोद में स्वयं की कल्पना करके बाली की आंखों से होश संभालने के बाद पहली बार आंसुओं की बूंदें ढुलक पड़ीं और उसके होंठ नमकीन हो गये.

थोड़ी देर की ख़ामोशी के बाद टैक्सी फिर रवाना हुई. इस बात की तसल्ली होने के बाद कि टैक्सी काफ़ी दूर चली गयी होगी, बाली काफ़ी प्रयास करके रेंगते हुए सड़क पर आ गया. एक घंटे के बाद उस सड़क पर जा रहे एक रिक्शेवाले ने बाली को रिक्शे पर बिठा लिया और उसे स्टेशन पर छोड़ दिया.

बहुत बड़ा बोझ उतारने के एहसास के साथ बाली लैंपपोस्ट की टेक लेकर बैठ गया और यह देखने की कोशिश करने लगा कि उसका पांव सचमुच ही टूट गया या फिर उसे यूं ही दर्द हो रहा था.

इसी बीच हिचकियां और सिसकियां सुनकर अनायास ही उसने अपना सिर उठाकर वेटिंग रूम के द्वार की ओर देखा.

वहां कुर्सी पर ज़िंदा लाश की तरह मुन्नी की मां बैठी हुई थी और उसकी बगल में ही मुन्नी का बाप खड़ा था.... बाली को याद आया कि मुन्नी को सड़क पर धकियाने से पहले उसने मुन्नी को उसके सभी जेवर पहना दिये थे.

श्री रवींद्र निलयम, श्रीराम नगर,
जग्गमपेट (आं. प्र.) ५३३४३५.
फोन : ९८६६४६७०६२

अनुवादक : *डॉ. के. वी. नरसिंह राव,*
बी-२०४, नेमिनाथ टॉवर, एवर शाइन सिटी,
वसई (पू), ठाणे ४०१२०८,
फोन : ९८३३१२२७०६

आमने-सामने

''मेरे गीत पखेरू नभ में उड़ने वाले हैं''

✍ आचार्य ओ३म प्रकाश मिश्र 'कंचन'

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखन केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार और नरेंद्र कौर छाबड़ा से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन' की आत्मरचना.

'मेरे गीत पखेरू नभ में उड़नेवाले हैं,
किंतु धरा की हर धड़कन से जुड़नेवाले हैं.'

मुझे जन्म देने वाले माता-पिता का साया मेरे सिर से बचपन में ही उठ गया था. मेरी दूसरी मां ने यशोदा मैया की तरह मेरा पालन-पोषण किया. एम. ए. तक पढ़ाया, मेरा विवाह किया और मुझे इस योग्य बनाया कि मैं जीवन यापन कर सकूं.

'मां, तेरी छाया न यदि मिलती मुझे,
कौन माटी को भला कंचन बनाता?
प्यार यदि तुझसे नहीं मिलता मुझे तो,
कौन मां के प्यार का मतलब बताता?
वह सौतेली थी लेकिन क्या थी मैं क्या बतलाऊं,
मन करता है सौ जन्मों तक उसके ही गुण गाऊं.'

मैंने जीवनभर (अभी तक के ७३ वर्षों में) या तो पढ़ा या पढ़ाया. ७ दिन कम ४३ वर्ष मैंने अध्यापन किया. ३० जून सन १९९८ को मैं राजनीति विज्ञान विभागाध्यक्ष तथा उपप्राचार्य के पद से सेवा निवृत्त हुआ. सेवानिवृत्ति पर मैंने कहा था-

'अब तक वेतन पर निर्भर था ।
शिक्षक होकर भी नौकर था ।।
अब तक था मैं स्व को समर्पित ।
और कुछ अपनों तक ही सीमित ।।
पर अब शेब बचे जीवन को
कंचन, लोकार्पित करता हूं ।'

अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ मेरी रुचि संगीत, रंगकर्म, चित्रकला तथा समाजसेवा में रही. संगीत मेरा प्रथम प्यार है और कविता जीवन की समीक्षा.

'सत्यं-शिवं-सुंदरं का जिसमें संयोजन है,
वही सरस संगीत मीत है मेरा जीवन है ।
ऊषा की लाली में भैरव संध्या में कल्याण बसे ।
मध्य दिवस सारंग रात्रि में देश विहाग सिंगार सजे ।
केवल है संगीत कि जिसका कंचन पर ऋण है ।।'

किंतु दुर्भाग्य!

'डस गया डिस्को हमारे भागवत संगीत को ।'

हमें सोचना होगा कि-

'राष्ट्र के संगीत का स्वर भंग क्योंकर है ?
और सतरंगी चुनर बदरंग क्योंकर है ?'

उ. प्र. का जनपद फ़र्रुखाबाद महाभारत कालीन तथा बौद्ध कालीन अवशेषों को अपने में संजोये है. यह जनपद महीयसी महादेवी वर्मा की जन्म स्थली है.

'हे महादेवि, तुमको प्रणाम !
पंचाल सुते, तुमको प्रणाम !
करुणे-ममते, तुमको प्रणाम !
हे अमर कथे, तुमको प्रणाम ।'

संगीत के क्षेत्र में फ़र्रुखाबाद बंदिश की ठुमरी के अप्रतिम रचनाकार व गायक ललन पिया तथा तबले के फ़र्रूखाबाद घराने के प्रवर्तक हाजी विलायत अली की भी जन्मस्थली है. मैंने संस्कार भारती के तत्वावधान में छः 'ललन पिया महोत्सव' आयोजित किये हैं तथा 'ललन पिया हाजी विलायत अली संगीत अकादमी' की स्थापना की है जो भातखंडे संगीत विद्यापीठ से संबद्ध है.

फ़र्रूखाबाद लोकनाट्य रामलीला की अपनी विशिष्ट शैली के लिए प्रसिद्ध है. मैंने आदर्श रामलीला मंडल में अभिनय भी किया और संगीत निदेशन भी. मेरी प्रेरणा व संरक्षक स्व. दादा चंद्रशेखर शुक्ल थे जिन्हें पापा जी (रंगमंच सम्राट पृथ्वी राज कपूर) का आशीर्वाद प्राप्त था. हमने पृथ्वी थियेटर के दो नाटकों - 'कलाकार' और 'आहुति' का मंचन किया. रमेश मेहता लिखित, नाटकों 'फ़ैसला', 'ज़माना', 'अपराधी कौन' तथा डॉ. राम कुमार वर्मा के ऐतिहासिक नाटकों 'तैमूर की हार' और 'औरंगजेब़ की आख़िरी रात' आदि अनेक नाटकों में अभिनय व संगीत निदेशन किया. .

फ़र्रुखाबाद लोकनाट्य 'नौटंकी' के लिए भी प्रसिद्ध रहा है. नौटंकी के महान कलाकार तिरमोहन और गुलाब बाई हमारे जनपद के ही थे. मैंने 'सुलताना डाकू' में उस समय अभिनय किया जब मैं मात्र १२ वर्ष का था.

जहां तक कविता की बात है, प्रारंभ में मैं फ़िल्मी गीतों की धुनों पर गाने लिखता था जैसे-

'पंद्रह अगस्त का हैं ये ऐलान दोस्तो ।
जन-जन का वंदे मातरम हो गान दोस्तो ।।
इस गान से अतीत की गाथाएं हैं गढ़ीं,
इस गान से भविष्य की आशाएं हैं जुडीं,
इस गान से है अपना वर्तमान दोस्तो ।

x x x

'बच्चे हों दो, ज़्यादा से ज़्यादा तीन,
सुख से रहो, हो ज़िंदगी रंगीन
धर ध्यान अरे मन, परिवार नियोजन !'

फिर ऐसा हुआ कि हमारे नगर में बद्री विशाल कॉलेज में डॉ. रामेश्वर द्विवेदी (साहित्यकार) हिंदी के प्रवक्ता होकर आये. मेरी उनसे भेंट हुई. उन्होंने मेरे गाने सुने और बोले- 'आप गीत लिख सकते हैं.' वे मुझे कवि गोष्ठियों में ले जाने लगे. तब मैं समझा कि कविता क्या होती है. मैंने एक गीत लिखा और उन्हें सुनाया जिसे सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए और बोले- 'आज से आप ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन' हुए.' इस प्रकार मुझे कंचन उपनाम डॉ. रामेश्वर द्विवेदी ने ही दिया. उनके कहने पर ही मैं नित्य सुबह और शाम निराला जी की सरस्वती वंदना- 'वर दे, वीणा वादिनि, वर दे.' सस्वर (राग केदार में) मां का ध्यान करके गाने लगा. और देखिए मां ने मेरी प्रार्थना सुन ली. एक सर्राटे में मैं कई शृंगारिक गीत लिख गया जिन्हें काव्यमंचों पर ख़ूब सराहा गया. तब एक दिन मैंने मां से कहा-

'तुम्हें देखा नहीं मैंने पर इतना जानता हूं मैं ।
इशारे पर तुम्हारे ही मैं गाता-नाचता हूं मैं ।
किसी को बद्दुआ मत दो न ही शिकवा करो कोई,
सभी अपना किया भोगेंगे ऐसा मानता हूं मैं ।'

धीरे-धीरे मेरी चिंतन धारा बदल गयी और मेरी कविता भी समाज, देश और विश्व की ओर मुड़ गयी. परिणाम स्वरूप विभिन्न विषयों पर सैकड़ों-सैकड़ों मुक्तक, दोहे, छंद, गीत, नवगीत, ग़ज़लें, कनउजी गीत, बाल गीत, काव्यात्मक आख्यायिकाएं और चिंतन प्रधान अतुकांत रचनाएं लिख गयीं.

मेरी प्रकाशित काव्य कृतियां हैं- १) जा दिन बजिहैं ढोल नगाड़े (कनउजी गीत संग्रह), २) धनुष की टंकार पर (गिरि वनवासियों पर काव्यात्मक आख्यायिकाएं, ३) ये वतन का मामला है (राष्ट्रीय रचनाएं), ४) जय परशुराम, ५) जब से उगा है सूर्य (छंद), ६) चिंता की रेखाएं (अतुकांत रचनाएं), ७) गांधी जी का गुलदस्ता (बालगीत), ८) क्रांतिवीर भगत सिंह, ९) अनेक संवेत काव्य संग्रह.

अप्रकाशित काव्य कृतियां जो शीघ्र ही प्रकाशित होगीं. १) ऋषि योजना (श्रीराम कथा), २) दर्द की दास्तां (ग़ज़ल संग्रह), ३) जनता के न्यायालय में (राजनीतिक रचनाएं).

'कवि कंचन की कविता में वस्तु और शिल्प' शीर्षक एक लघुशोध भी एम. ए. हिंदी की एक छात्रा ने कानपुर विश्व विद्यालय में प्रस्तुत किया है.

'सुनामी', 'ललन पिया विशेषांक' तथा सुकवि रमेश कृत 'गंगालहरी' का संपादन भी मैंने किया है. साहित्यकार संसद फ़र्रुखाबाद की स्थापना भी मेरा

एक सेवा कार्य ही है.

अनेक साहित्यिक संस्थाओं ने मुझे साहित्य-सेवा हेतु मानद उपाधियां प्रदान की हैं- जैसे फ़र्रुखाबाद गौरव, साहित्य गौरव, साहित्य सौमित्र, आचार्य आदि.

कविताओं के अतिरिक्त मैंने कई नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानियां तथा लेख लिखे हैं.

सर्वांत में मैं अपनी कुछ प्रतिनिधि काव्य-पंक्तियां प्रस्तुत कर अपनी बात समाप्त करता हूं-

'जो मिटती है मिट जाये हस्ती मगर हम
वतन पर कभी आंच आने न देंगे।
कलमकार हैं तो कलम पर हम अपनी
ज़माने को उंगली उठाने न देंगे ।।१।।'

आपात स्थिति १९७५ के दौरान मैंने कहा था-

'अभी भी पंछियों में कुव्वते परवाज़ बाकी है।
सिले हैं होठ लेकिन कंठ में आवाज़ बाकी है।
तुम्हारे पास ताकत है हमारे पास तेवर है.
चलेगी जंग जब तक एक भी जांबाज़ बाकी है।।२।।'
'कंकड़ तोड़े पत्थर कूटे जिन हाथों ने
उनका न कहीं पर नाम दिखाई देता है।
संगमरमर पर जिन लोगों के है नाम खुदा
बस उनका ही जयघोष सुनाई देता है।।३।।'
जब तक ना जाये बीत ये मौसम क्रंदन का
दलितों के शोषण दोहन औ' उत्पीड़न का,
जब तक ना देश बने फिर पंछी कंचन का,
तब तलक लेखनी गीत जागरण के गाये ।।४।।'
'कहां तक करें प्रतीक्षा और ?
कब तक बांधे रहें बताओ, लोकतंत्र का मौर?
कितनी बार बजी शहनाई, सड़कें गलियां
सजायी गयीं ।
मंगलगीत बजे ढोलक पर, घड़ भांवरों की ना आयी।
जन-जानकी मनाये कब तक बोलो
गणपति-गौर ? ।।५।।'
'कैसा यह लोकतंत्र कैसा यह शासन है?
लोकनीति को नंगा कर रहा दुशासन है।
चुग़दों की चांदी है, हुमा मरे जाते हैं।
धर्मराज बाज़ी हर बार हार जाते हैं।
क्योंकि शकुनि संचालित करता निर्वाचन है ।।६।।'
'माना कुछ ख़ामियां हैं प्रजातंत्र में।
दर्जनों ख़ूबियां हैं प्रजातंत्र में।
है न जागृत जहां लोकमत बस वहीं,
सारी दुशवारियां हैं प्रजातंत्र में ।।६।।'
'क्यों ख़ुशी से खिले दिल कली की तरह,
आदमी जब न दरअस्ल है आदमी।
बस बनावट का हमशक्ल है आदमी।
तीरगी कब हुई रोशनी की तरह ।।८।।'
'जीवन है भटका भटका, अंतस है चटका चटका।।
सो गयी है आलस में छांव, सोये शहरों के संग गांव।
सन्नाटा निगल गया पथ, आतंकित सूरज के पांव।
जाग गये नींद भरे पंख, नीड़ों को भय ने
गटका ।।९।।'
'अब हमको चाणक्य नीति अपनानी होगी।
रामदूत बन लंकापुरी जलानी होगी ।।१०।।'

मातृछाया, ४/४२, महादेव प्रसाद स्ट्रीट,
फर्रुखाबाद (उ.प्र.) २०९६२५
फो. ९४५०००६४०४

ग़ज़ल

देवेंद्र कुमार पाठक

दिल में जिसके ज़हर भरा है ।
उसकी जुबां से शहद झरा है ।।
खरा-खरा सच कहनेवाला ।
झूठ की दुनिया में अखरा है ।।
दिल की बस्ती में वीराना ।
ज़हन के गलियों में ख़तरा है ।।
संगदिल है भगवान तुम्हारा ।
मेरा ख़ुदा हुआ बहरा है ।।
सच कहने पर है पाबंदी ।
सच सुनने पर भी पहरा है ।।
दर्द का मीठापन अनबिसरा ।
ज़ख्मे-दिल अब तलक हरा है ।।
जीने को महरूम एक दिन ।
वह हर दिन सौ बार मरा है ।।

प्रेमनगर, खिरहनी, साइंस-कॉलेज,
डाकघर, कटनी-४८३५०१

'ज्यादा ज़रूरी है संवेदनशील आम आदमी बनना'

✍ विश्वनाथ सचदेव

(कैलाश सेंगर से वरिष्ठ पत्रकार-कवि विश्वनाथ सचदेव से एक अंतरंग बातचीत)

संगम केवल नदियों का ही नहीं होता बल्कि कई बार एक ही व्यक्ति में दो विधाएं अपने उत्कृष्ट प्रवाहों के साथ मिलती हैं तब उसे हम सृजन-संगम भी कह सकते हैं. मुंबई के साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं पत्रकारिता जगत से जुड़ा एक आदरणीय एवं महत्वपूर्ण नाम है विश्वनाथ सचदेव. श्री सचदेव एक साथ पत्रकारिता और साहित्य की विभिन्न धाराओं के बीच लगातार अपनी कलम का महत्व राष्ट्रीय स्तर पर मनवाते रहे हैं. पिछले ४५ वर्षों से कलम से जुड़े विश्वनाथ जी आज भी दोनों विधाओं में नित नये-नये पड़ाव तलाशते रहते हैं.

आज भारतीय विद्याभवन की पत्रिका 'नवनीत', के वे संपादक हैं. पर पीछे पलट कर देखने पर उन्हें और उनके निकटवर्तियों को उनके कई पहलू नज़र आते हैं. एक शाम हमने उन्हें उनकी यादों को खंगालने पर विवश करते हुए पूछ लिये कुछ सवाल और उसके साथ ही खुलती गयी इस रचनाधर्मी की लेखन प्रक्रिया और इस प्रक्रिया से उनका इश्क.

बात शुरू करते हुए जब हमने उनके जन्म और बचपन के बारे में पूछ लिया तब विश्वनाथ जी ने कहा, 'इसके लिए हमें चलना पड़ेगा साल १९४२ में पाकिस्तान के सरगोधा जिले के साहिवाल में. वहीं जन्मा था मैं. पिताजी पंजाब नेशनल बैंक में क्वेटा में मैनेजर थे. इस बीच जब हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंटवारे की हवा चली तब हम भी हिंदू फौजों के साथ वहां से निकलने लगे लेकिन पाकिस्तानी सैनिकों ने हमें रोकते हुए कहा कि इनके साथ ग़ैर-सैनिक लोग नहीं जा सकते. पिताजी को गिरफ़्तार कर लिया गया. तब उनकी जमानत पाकिस्तान के एक मुसलमान सज्जन ने देकर उन्हें छुड़ाया. पिताजी बैंक से जुड़े होने के कारण वहां रुकने पर विवश थे और हम परिवार के अन्य लोग वहां से

कराची आ गये. कराची से ओखा और बाद में ओखा से दिल्ली के शरणार्थी कैंप में. मामा जी हरिद्वार थे. वहीं उनके साथ आश्रम में हमने सात-आठ महीने गुज़ारे. वहां मां बहुत बीमार रहती थीं. पर जब तक पिताजी हमेशा के लिए पाकिस्तान छोड़कर हमारे साथ रहने आते तब तक मां का देहांत हो चुका था. हरिद्वार से अपनी बैंक की नौकरी के तहत पिताजी की पोस्टिंग भरतपुर हो गयी. भरतपुर के बाद किशनगढ़, उसके बाद हम सिरोही आये. भरतपुर-किशनगढ़ में प्राइमरी शिक्षा और बाद की नौंवी तक की पढ़ाई सिरोही में हुई.

'क्या बचपन में भी आपका लगाव पत्रकारिता या कविता-कहानी से था?'

मुस्कुराते हुए विश्वनाथ जी ने कहा, 'मैं इस घटना को अपनी पत्रकारिता की शुरुआत मानता हूं. हमने पड़ोस के घर में रेडियो पर सुना कि तत्कालीन अन्नमंत्री रफ़ी अहमद किदवई का निधन हो गया है. मैंने इस ख़बर को हाथ से लिखकर उसकी आठ-दस प्रतियां बनायीं और आसपास के घरों में वे प्रतियां दे आया. तब मुझे लग रहा था कि यह ख़बर आसपास सभी को पता चलनी चाहिए. सातवीं कक्षा की इस घटना को मैं अपने भीतर पड़ा पत्रकारिता का बीज मानता हूं.'

'और कविता का बीज कब पड़ा?'

'वह तो प्राइमरी में ही हमारे शिक्षक भोमाराम आर्य ने एक दिन कविता लिखने की बात छात्रों से

कही, तब मैंने जब पहली तुकबंदी की थी, तभी पड़ा था कविता का बीज. मेरी पहली कविता की पंक्तियां थीं- 'बंदर मामा, बंदर मारा करता खो-खो-खो/मोटर आयी, करती भो-भो-भो.' इसके बाद नौवीं पास करने के बाद जब पिताजी के ट्रांसफर के कारण मैं बीकानेर आया तब १९५७ के बाद अपनी सोच के हिसाब से एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था 'चुनाव के बाद कांग्रेस किधर?' वह एक समाचार-पत्र 'लोकमत' में छपा भी. वहां के संपादक ओंकार पारिख ने वहीं मुझे 'साहित्यालोक' संस्था से जुड़ने के लिए कहा और मुझे लेने प्रसिद्ध लेखक-गीतकार मंगल सक्सेना मेरे घर आये. उनके जेहन, में किसी बड़ी उम्र वाले व्यक्ति की छवि थी. लेकिन 'विश्वनाथ जी' के नाम पर जब मुझ जैसे किशोर को उन्होंने पाया तो वे चकित रह गये. यहीं मैं हरीश भादानी, यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' तथा राजानंद भटनागर आदि के संपर्क में आया. इंटर में मैंने 'सेनानी' नामक पत्र में अंतर्राष्ट्रीय विषयों पर साप्ताहिक कॉलम लिखना आरंभ किया. हस्तलिखित पत्रिकाएं तो छठी क्लास से ही साल में तीन बार निकालने लगा था मैं और वह भी तीन साल तक लगातार. मैट्रिक में 'कलिका' नाम से हस्तलिखित पत्रिका निकाली, जिसमें पहली बार सामाजिक विषय पर लेख लिखा, तत्कालीन वित्त मंत्री को भारतीय स्पुतनिक कहते हुए. इंटर पास करने के बाद १९६२ से हमने 'वातायन' नामक साहित्यिक पत्रिका निकालना शुरू की. मैं संपादक था और प्रबंध संपादक थे हरीश भादानी और पूनम दइया. 'वातायन' में दो साल रहने के बाद बी. ए. होते ही एम. ए. करने मैं जयपुर आ गया. हिंदी से तो जुड़ा हुआ था ही, अंग्रेजी साहित्य से जुड़ने के मकसद से अंग्रेजी में एम. ए. किया. उसके बाद नागपुर के हिस्लाप कॉलेज पत्रकारिता का कोर्स १९६५ में पूरा कर 'नेशनल हेरॉल्ड' में तीन महिने ट्रेनिंग ली. १९६८ में 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रशिक्षार्थी पत्रकार के रूप में आया. वहां 'धर्मयुग' में डॉ. धर्मवीर भारती के साथ छह महीने काम किया. प्रशिक्षार्थी के रूप में 'माधुरी', 'सारिका' में भी कुछ दिन बिताये. इसके बाद ट्रेनिंग पूरी करने के बाद मैं 'नवभारत टाइम्स' में आ गया. तब, महावीर अधिकारी 'नभाटा' के संपादक थे. उन दिनों मुझे 'रविवार्ता' की ज़िम्मेदारी सौंपी गयी. तब विशेष बात यह थी कि दिल्ली संस्करण के लिए भी 'रविवार्ता' के पृष्ठ मुंबई से बनकर जाते थे. उन दिनों जब मुंबई में हड़ताल हुई, तब मुझे 'रविवार्ता' के संपादक के लिए विशेष रूप से दिल्ली बुलाया गया. इस बीच, बीबीसी के लिए मेरा चयन हो गया था चार साल के लिए. पर, मैं दो साल से ज़्यादा के लिए वहां जाना नहीं चाहता था. इसलिए बीबीसी का प्रस्ताव मैंने ठुकरा दिया.'

'आपने कई संपादकों के साथ कार्य किया है, उन तमाम संपादकों की कुछ विशेषताएं हमें बता पायेंगे?'

'सबकी अपनी-अपनी विशेषताएं थीं. 'रागदुर्गा' नामक पुस्तक इंदिरा गांधी पर लिखनेवाले महावीर अधिकारी कांग्रेसी होने के बावजूद दूसरों को अपने मन के अनुसार लिखने की पूरी छूट देते थे. लेकिन एक बात सहयोगियों से कहते थे कि अपने बॉस का विश्वास बनाये रखना चाहिए. एस. पी. सिंह बहुत साफ़ विजन के संपादक थे. वे समय से काफ़ी आगे की सोच रखते थे और पत्रकारिता की नब्ज जानते थे. 'धर्मयुग' से निकलने के बावजूद 'रविवार' जैसी अलग शैली की पत्रिका इसीलिए उन्होंने अलग पहचान के साथ सफलतापूर्वक निकाली. एक बार जब वे मुंबई आये तब मुझे उन्होंने एक रात कहा कि सुबह तक अब्दुल रहमान अंतुले पर कवर स्टोरी लिख दो. सुबह जब मैंने उन्हें वह स्टोरी दी तब उनकी प्रक्रिया यह थी- 'मैं आपसे रिपोर्टिंग करवाना चाहता था, पर सॉरी, नहीं जान पाया कि आपमें 'एडिटोरियल मैटेरियल' था?'

'डॉ. धर्मवीर भारती व राजेंद्र माथुर के बारे में आप क्या कहेंगे?'

'डॉ. भारती कुशल संपादक थे. पाठक को कब क्या चाहिए और पाठक को कैसे ख़ुश रखा जा सकता है ये वे जानते थे. और यही धर्मयुग की सफलता का रहस्य भी था. आज भी 'अहा ज़िंदगी', कादंबिनी, 'आउटलुक' जैसी पत्रिकाओं पर 'धर्मयुग' की छाप आप देख सकते हैं. राजेंद्र माथुर वर्तमान में जीनेवाले पैनी नज़र के संपादक थे. वे जानते थे कि सही संपादकीय कैसे लिखा जाना चाहिए.'

हमने विश्वनाथ जी के लगातार लिखने से जुड़ा

विश्वनाथ सचदेव जी से बात करते हुए कैलाश सेंगर

एक अजीब-सा सवाल उनके सामने रखा, 'क्या कभी आपने किसी अन्य नाम से भी लेखन किया है?'

मुस्कुराते हुए वे बोले, 'हां, कभी सचदेव से सत्यदेव बना. 'श्रीवर्षा' में मैं 'विश्वास' नाम से लिखता रहा और एस. पी. सिंह ने 'रविवार' में मेरा नाम विश्वनाथ का पर्यायवाची शब्द 'कैलाशपति' रख दिया था.

'आज की पत्रकारिता पर अपनी टिप्पणी देंगे?'

'पिछले २५ वर्षों में पत्रकारिता पहले से ज़्यादा विषयों पर फोकस करने लगी है. पर, पत्रकारिता से व्यापार भी ज़्यादा जुड़ गया है. यह स्थिति सभी भाषाओं के पत्रों के साथ है. बड़े प्रकाशन भी अपने पत्रों में अब 'पेड ख़बरें' छापने लगे हैं. इस दौरान मीडिया ने बहुत से अच्छे काम भी किये हैं और हिम्मत से न्यायालय तथा राज्यपालों के खिलाफ़ भी आवाज़ उठाई है. लेकिन पत्रकारिता का उद्देश्य मालिकों के लिए पैसा कमाना अधिक हो गया है. ईमानदार व्यवसाय नहीं बल्कि सिर्फ लाभदायी व्यवसाय. यह ख़तरनाक है. पर, आज की पत्रकारिता विषयों को अभियान बनाकर परिवर्तन की क्षमता भी रखती है.'

अपनी बातों में उन्होंने हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में बढ़ते हुए अंग्रेजी के प्रभाव पर भी नाराज़गी व्यक्त की. लेकिन यह भी कहा कि सहजता से अंग्रेजी के शब्द आते हैं तो आने देने चाहिए लेकिन अंग्रेजी ठूंसना ग़लत है. उन्होंने यह भी कहा कि कथित राष्ट्रीय अख़बारों की तुलना में क्षेत्रीय अख़बारों में ज़्यादा जागरूकता है और साथ ही नाटकीयता की भी कमी है. दैनिक अख़बारों से ग़ायब होते साहित्यिक पन्नों के प्रति उन्होंने कहा कि साहित्यिक पाठकों के लिए अलग पत्रिकाएं हैं. इसलिए अख़बारों में साहित्य न हो तब भी काम चल सकता है. हमने पूछा कि आपका पत्रकार और साहित्यकार आपस में कभी झगड़ा नहीं करते?

'मैं कहूंगा कि नवनीत एक तरह से मिनी धर्मयुग है. नवनीत का प्रारूप मैंने बदला है. डायजेस्ट के अलावा भी बड़े कैनवास मैंने नवनीत के लिए खोले. वैचारिकता के धरातल पर कहानियां, उपन्यास अब नवनीत में छपते हैं.'

'बतौर संपादक आपने कई जगह काम किया है. किस पत्र या पत्रिका के संपादक के रूप में आपको अपना काम ज़्यादा पसंद आया?'

'मुझे नवभारत टाइम्स में अपने संपादन का दौर सबसे अच्छा लगा. जहां मुझे मन से काम करने का मौका मिला. मैं वहां ज़्यादा रमा भी.

'पर, कविता और पत्रकारिता में आपकी पहली पसंद क्या है?'

'पत्रकारिता मेरा पहला प्यार है. पत्रकारिता से मैं थोड़ा ज़्यादा जुड़ा हूं.'

एम-८०१, पंचशील गार्डन, महावीर नगर,
कांदिवली (प.), मुंबई-४०००६७
फ़ो-९८२१०४६३१६

कैलाश सेंगर
संकल्पना, प्लॉट नं. ११-२३, म्हाडा कॉलोनी,
एस. वी. पी. नगर, चार बंगला के पास,
अंधेरी (प.), मुंबई- ४०००५३
फ़ो-९८६९१३२६५७

बाइस्कोप

एक दिलकश गीतकार- सुधाकर शर्मा

सविता बजाज

(साहित्य और फ़िल्म का चोली दामन का साथ है. हमारे विशेष अनुरोध पर जानी मानी फ़िल्म, टी.वी., मंच कलाकारा व पत्रकार सुश्री सविता बजाज 'कथाबिंब' के लिए चलचित्र जगत से संबद्ध साहित्यकारों के साथ बिताये क्षणों को संस्मरण के रूप में प्रस्तुत कर रही हैं. अगले अंकों में पढ़िए बी. आर. इशारा, इम्तेयाज़ हुसैन आदि के बारे में.)

हाल ही के कुछ सालों में सुधाकर शर्मा जी के बारे में खूब सुना. मुलाकातें भी हुईं. लेकिन मेरी तीसरी इंद्रीय ने कहीं से भी यह नहीं माना कि आप ही वह मशहूर हस्ती हैं जिनके लिखे पचासों गाने जैसे, 'ओढ़ ली चुनरिया तेरे नाम की', 'तूने मेरी ज़िंदगी में आकर', 'सनम मेरे हमराज़', 'गली-गली कूचे-कूचे', ब्याह शादियों में बजते हैं. मैं तो इन्हें एक्टर समझती थी. बाप रे ! पाठक मित्रों, आप शायद सोचते होंगे उम्र बढ़ते-बढ़ते सविता सठिया गयी है. भई मैं क्या करूं. मैं हूं ही ऐसी, क्योंकि शर्मा जी की पर्सनैलिटी ही कुछ ऐसी है. खाता-पिता तंदरुस्त इंसान जो स्वास्थ्य के बारे में ख़ूब सजग है. बात-बात में हंसाते हैं. जब भी मिलते सामने वाले की ख़ुद तो चुटकी लेते ही है ख़ूद भी हंसते और मुझे भी हंसाते और कहते - सविता जी, ख़ूब हंसा करो. ख़ून बढ़ता है हंसने से. हंसना सेहत के लिए बहुत ज़रूरी है. और जब मैंने अपनी नादानी का इज़हार किया कि मैं तो आपको ऐक्टर समझती थी, गीतकार नहीं, तो बोले क्या बात करती हैं. मैं क्या पहलवान लगता हूं. कहकर ख़ूब हंसे. मेरा भी हंसी के मारे बुरा हाल था क्योंकि बात काफी हद तक सच थी. क्योंकि पहलवान भी तो ऐक्टर होते हैं.

सुधाकर जी अपने बारे में बताते हैं - मैं हरियाणा का हूं. किसान परिवार जहां पिता टीचर थे. लेकिन घर का माहौल लेखन और संगीत से लबालब. हमारे घर पर पूरा गांव जमा होता, महफिलें लगतीं. दादा तीन भाई थे - लिखीराम, ताराचंद और तुलीराम. दादा लिखीराम संगीत के दीवाने. बचपन से यही करता रहा. बड़ा हुआ तो दिल्ली विश्व-विद्यालय से बी. ए. कर मुंबई आ गया कुछ बनने.

मुंबई में घनघोर तपस्या की, ख़ूब स्ट्रगल किया. बस समझ लो यहां जीवन लौहे के चने चबाने जैसी बात है. ग्रांट रोड पर पानी भरने का काम किया. रात वहीं टेरैस पर सो जाता था. शंकर जयकिशन का साथ पाने के लिए वहां स्पॉट बाय का काम भी किया. किशोर कुमार के साथ करीब सत्रह साल असिस्टेंट डायरेक्टर का काम किया. फिर डायरेक्टर बन गया और कुछ फ़िल्में भी डायरेक्ट कीं, जैसे - 'गौरी', 'सावन' और 'इन्साफ़ का सूरज'. लेकिन ज़्यादा मशहूर मैं अपने लिखे गानों की वज़ह से हुआ. 'प्यार किया तो डरना क्या', 'हैलो ब्रदर', 'हमराज', 'जोड़ी नं. वन' जैसी पचासों फ़िल्मों के गाने लिखे लेकिन सही मायने में मेरा लिखा गाना - 'ओढ़ ली चुनरिया' बहुत हिट हुआ तो मुझ पर पैसों की बारिश सी हुई, मतलब मुझे मेरे लिखे गानों के ज़्यादा पैसे मिलने लगे.

सविता - 'सुधाकर जी, पैसों के मामले में आज का दौर अच्छा है या पहले अच्छा था?'

सुधाकर जी - 'आज का यंग ग्रुप मनी मेकर है. पहले भी यहां ग्रुप्स थे, आज भी हैं. बदला कुछ नहीं. पहले कला की कद्र थी. आज फास्ट फूड का ज़माना है. बाकी स्ट्रगल भी है पहले जैसी. हमेशा करनी पड़ती है. बच्चों में ईगो बहुत है, पहले ऐसा नहीं था.'

सविता - 'सब यहां मिला. अब?'

सुधाकर - 'यहीं से नाम मिला, दाम मिला. अंतिम मुकाम की इच्छा है. शैलेंद्र जी की एक लाइन याद आती है -'

'दुनिया नयी है, चेहरा पुराना,
आधी हकीक़त, आधा फ़साना,
काम नये नित, गीत बनाना,
मीत बनाके, जहां को सुनाना,
कोई न मिले तो अकेले में गाना.

द्वारा श्री साईनाथ एस्टेट, डी-३, बी-२,
सह्याद्री नगर, चारकोप, मुंबई-४०० ०६७
फोन : ९२२३२०६३५६

सुधाकर शर्मा

गीतकार (लिरिसिस्ट)
२३ जनवरी १९५५, मंदकौल (हरियाणा),
बी. ए. (दिल्ली वि. वि.)

फ़िल्म निर्देशन : गौरी, सावन तथा इंसाफ़ का सूरज.
गीत लेखन : हिंदी – लगभग ५० फ़िल्में, क्षेत्रीय फ़िल्में – ११ (राजस्थानी, मराठी, भोजपुरी), २२ सीरियल व २० म्युजिक एलबम. वर्तमान में अनेक प्रॉजेक्टस (फ़िल्म, सीरियल आदि) से संबद्ध.
पुरस्कार : १९९४ से २००९ के बीच कई संस्थाओं द्वारा श्रेष्ठ गीतकार के रूप में पुरस्कृत.

कविता

भाग-दौड़

राजेंद्र 'आहुति'

कुछ देखूं या न देखूं
मैं नित आकाश देखता हूं,
उस जैसी विशालता पाने के यत्न में
क्रोध, विवशता, लापरवाही, झुंझलाहट
और अनगिन चिंताओं के चिंतन मुक्त निदान में
चित्त शांत कर, सजधज कर
एक लुभानेवाली मुस्कान चेहरे पर उगा कर
मैं रोज़ एक नव जीवन पथ पर
किसी को किसी प्रकार का हमसे दुख न हो
की भावना का सैलाब मन में संजोये
घर से बाहर निकलता हूं.
भास्कर से चलते रहने का
चांद के घटते-बढ़ते स्वरूप से
तारों से टिमटिमाते रहने का,
बादल से उचित समय पर बरसते रहने का
नया पाठ पढ़ता रहता हूं.
रोज़-रोज़ के इस चक्र ने
हंसने से अधिक रुलाया,
रोते-हंसते सपरिवार बसते
शनैः शनैः प्रवेश कर गया उम्र के अठावनवें वर्ष में
आगे जुड़ेंगे और कितने वर्ष
इस वसुंधरा पर
कुछ भी इसका पता नहीं
मगर इतना पता है
नहीं छूटा साथ अब तक संघर्ष का.
सड़क पर भागते सारे पांव और पहिये
बेचैन से लग रहे हैं,
क्या से क्या न जाने क्या हो जाने की होड़ में
एक विचित्र तरह की तीव्रता
हर जन-मन में समाती जा रही है.
रोज़-रोज़ रोज़गार में लगे रहने के बावजूद
पूरी न कर पाऊं
घर की, हित, मीत की, चित, उचित,
अनुचित इच्छाएं,
तो इसमें हमारा क्या दोष?
समय की आंधी ने कोई भी काम
समय पर हो जाना
असंभव कर दिया है,
लेकिन हो जाता है सब संभव
निरंतर बस लगे रहने पर.

ए-१३/६८, भगतपुरी, प्रल्हाटघाट, वाराणसी-२२१००१

पुस्तक-समीक्षा

स्त्री-जीवन का एक कोलाज

डॉ. सुनीता सृष्टि

'आम औरत : ज़िंदा सवाल' (विमर्श) : **सुधा अरोड़ा**
प्रकाशक : सामयिक प्रकाशन, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-२. **मू.** ३००/- रु.

समीक्ष्य पुस्तक 'आम औरत : ज़िंदा सवाल' को दो खंडों में बांटा जा सकता है. पुस्तक की भूमिका, जिसे आत्मकथ्य भी कहा जा सकता है, पुस्तक में महत्त्वपूर्ण स्थान घेरती है. सुधा अरोड़ा के अंतर्द्वंद्व में औरत के भीतर छुपे हुए एक सजग, जागरूक व्यक्ति की छटपटाहट को पाया जा सकता है, कम-से-कम उस युग की स्त्री की जिसके सामने मुक्ति की मंजिल तो थी, पर राह नहीं. सुधा अरोड़ा का संबंध भारतीय स्त्री की उस पीढ़ी से है जिसके पास शिक्षा तो थी, पर दिशा नहीं, जो पारंपरिक संस्कारों के बंधन को सामर्थ्य के बावजूद तोड़ नहीं पा रही थी. इस शिक्षित स्त्री की बिडंबना और बड़ी है क्योंकि शिक्षा ने उसका व्यक्तित्व निर्मित किया है और व्यक्तित्व अपनी पहचान मांगता है. पर स्त्री के लिए अपनी पहचान स्थापित करने के प्रयास के साथ ही सारे समीकरण गड़बड़ा जाते हैं और पितृसत्ता को अपना आसन डोलता प्रतीत होने लगता है.

अपने आत्मकथ्य में सुधा अरोड़ा अपने रचनात्मक उत्कर्ष के साथ उन ग्यारह लंबे वर्षों की भी चर्चा करती हैं जो रचनात्मक दृष्टि से शून्य रहे. किंतु इन्हीं वर्षों ने उन्हें स्त्री-जीवन की सच्चाइयों से परिचित भी कराया. एक रचनाकार व एक गृहिणी के दोहरे व्यक्तित्व के अंतर्द्वंद्व को वे लगातार झेलती रहीं. किसी भी स्त्री के लिए इन दोनों मोर्चों का एक साथ सफल निर्वाह संभव नहीं - वैसे ही जैसे एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं. मातृत्व का निर्वाह, पारिवारिक दायित्व, घर-गृहस्थी के पचड़े, आस-पास का स्त्री-जीवन समझने की दृष्टि देता है.

जिन वर्षों को सुधा अरोड़ा रचनाशून्य मानती हैं, उन दिनों को किंतु निष्क्रिय नहीं कहा जा सकता. लेखिका की सजग आंखें अपने चतुर्दिक के जीवन का गहन अवलोकन कर रही थीं और ये अनुभव उनके संवेदनशील मन पर अपनी अमिट छाप छोड़ रहे थे. रचनात्मक मन की छटपटाहट उन्हें विविध साहित्यिक-सांस्कृतिक व सामाजिक संस्थाओं से जोड़ती है. सुधा अरोड़ा का लेखन आत्ममुग्धता का लेखन नहीं है. वे लगातार अपने लेखन की सामाजिकता, प्रतिबद्धता को जांचती, परखती चलती हैं. इसलिए ऐसे भी क्षण आते हैं जब उनका मन अपनी ही रचनात्मकता पर प्रश्न चिन्ह लगाता है. वे अपनी रचनात्मकता को सीधे समाज से जोड़कर देखती हैं. रचना उनके लिए शब्दाडंबर मात्र नहीं है. एकांगी संवेदना व्यक्ति को आत्मलिप्त बनाती है, पर सुधा अरोड़ा संवेदनशील होने के साथ सजग, सक्रिय व समाजोन्मुख हैं. इसलिए उनके लेखन में एक तरफ समाज के प्रति प्रतिबद्धता का आग्रह है तो दूसरी तरफ उसके प्रति सवाल भी. 'हेल्प' संस्था से जुड़ने के बाद उन्हें लगता है कि, ''यहां जिस तरह का काम किया जाता था, मुझे लगता था, वह लिखने से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है.''

'हेल्प' संस्था से जुड़ाव को सुधा अरोड़ा अपने जीवन का नया मोड़ मानती हैं- ''इसमें संदेह नहीं कि अगर 'हेल्प' की दुनिया से मेरा परिचय न हुआ होता और मैंने दोबारा लिखना न शुरू किया होता तो मैं आम घरेलू गृहिणी की तरह शादी की सालगिरह की तारीख़ अक्सर भूल जाने वाले एक सफल अफ़सर पति की चारदिवारी में क़ैद बेहद कुंठित, बात-बात में झल्लाने वाली, बाहर की दुनिया से मुंह छिपानेवाली एक शीजाफ्रेनिक पत्नी होती, जो अपने पति के सरनेम से ही जानी जाती. 'हेल्प' के द्वारा उनका परिचय स्त्री-जीवन की निर्मम नियति से होता है. ये ही अनुभव उनके उन आलेखों के प्रेरणा-स्रोत बनते हैं जो समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे. स्त्री जीवन का यह निर्मम सत्य उनकी संवेदना को इस कदर झकझोरता है कि वे उसे सीधे आलेखों के रूप में अभिव्यक्त करने को विवश होती है.

अलग-अलग क्षेत्रों से आनेवाली ये औरतें मध्य वर्गीय स्त्री जीवन की नियति का एक विशालकाय कोलाज बनाते हैं जहां उनके अनुभवों में अदभुत साम्य है. देश के विविध भागों में घटित घटनाएं भी लेखिका को आहत व द्रवित करती हैं. अपने व्यक्तिगत जीवन की सीमाओं से बाहर निकलकर वे पाती हैं कि पुरुष

पर निर्भरता आर्थिक भी हो सकती है और मानसिक भी. इस निर्भरता की घुट्टी हमारा पित्तृसत्तात्मक समाज स्त्रियों को बचपन से ही पिलाता रहा है और इसी का परिणाम है कि कई बार शिक्षित व समर्थ महिलाएं भी पति व बच्चों के नाम पर घर-परिवार तक अपने आपको समेटकर अपने ही उड़ने के पंख काट लेती हैं.

अलग-अलग स्त्रियों के अनुभव लेखिका को इस निष्कर्ष पर पहुंचाते हैं कि ''हक़ीकत यह है कि एक घरेलू औरत या 'हाउसवाइफ' का दर्जा एक सभ्रांत भिखारी से ज़्यादा नहीं होता. साथ-साथ रहने के सत्ताइस या तीस साल बाद भी किसी दिन आपकी झोली भिक्षापात्रा में तब्दील हो सकती है.'' इसलिए सुधा अरोड़ा इस बात पर बल देती हैं कि- ''कुल जमा बात यह कि पति चाहे कितना भी प्रतिष्ठित या दौलतमंद क्यों न हो, औरत को थोड़ी-सी 'स्पेस' या सांस ले पाने की जगह मिले ताकि अपने पति की आर्थिक दशा से अलग अपने पैरों पर खड़ी हो सके. उसके व उसके पति के बीच एक मालिक और गुलाम का रिश्ता न रहे, जो अंततः स्वामी या मालिक की मर्जी से ही परिचालित होता है.''

औरत की विडंबना यह होती है कि वह न केवल अपना श्रम बल्कि कई बार अपनी प्रतिभा परिवार के लिए होम कर देती है. लेकिन उसके इस कार्य का उचित मूल्यांकन नहीं होता. इसलिए एक दिन वह पाती है कि उसे स्वतंत्र रूप से खड़ी होने के लिए ज़मीन भी नहीं मिल रही - न तो अपने मां बाप के घर में, और न वहां जहां के लिए उसने अपना जीवन होम कर दिया. ऐसी स्थिति में हर अत्याचार को चुपचाप स्वीकार करने के अलावा और कोई विकल्प शेष नहीं बचता. पति की निष्ठुरता उसे घर छोड़कर जाने को प्रेरित भी करती है तो सवाल उठता है कि वह आख़िर जाये कहां!

पुरुष स्त्री की इस कमजोर स्थिति का फ़ायदा उठाकर विविध प्रकार से स्त्री को प्रताड़ित करता है. इस बात को बर्दाश्त करने के अलावा कोई चारा नहीं. पुरुष की प्रताड़ना के कई-कई रूप हैं जिनमें सबसे आम है शारीरिक प्रताड़ना. आम तौर पर मान लिया जाता है कि ऐसा निम्न वर्ग में ही घटित होता है. किंतु सुधा अरोड़ा ने विविध स्त्रियों के अनुभवों से जाना है कि शिक्षित, संपन्न व सुसंस्कृत कहे जानेवाले पुरुष भी अपने घरों में अपनी पत्नियों के साथ ऐसा ही व्यवहार करते पाये गये है.

ये स्थितियां स्त्री को अंततः मानसिक विक्षिप्तता की कगार पर ला खड़ा करती हैं. कई बार ऐसा सयत्न दवाओं की सहायता से किया जाता है. अपने द्वंद्व व पीड़ा को अभिव्यक्त न कर पाना भी उन्हें मानसिक रूप से असंतुलित कर जाता है.

सुधा अरोड़ा बड़ा सार्थक संकेत करती हैं जब वे लिखती हैं - ''अगली बार जब आपका सामना मध्यवर्ग या संभ्रांत परिवार की किसी ऐसी शादीशुदा महिला से हो जो मानसिक रूप से विक्षिप्त घोषित कर दी गयी है तो उसे एक सामान्य पागलपन का केस समझकर ख़ारिज न कर दें! यह निश्चित मानिए कि वह अपने भीतर एक सुनियोजित साजिश का इतिहास संजोये है.''

इतनी सारी स्त्रियों से जुड़ाव लेखिका में वह आत्मविश्वास भरता है जहां वे विमर्श से आगे बढ़कर मार्ग का निर्देश भी देती हैं. स्त्री-विमर्श में यह एक सार्थक पहल है. इसलिए वे स्त्री को अपने अधिकारों के प्रति सचेत करती हैं, शिक्षा पर बल देती हैं, घरेलू श्रम की कीमत बताती हैं. संपत्ति पर अधिकार के विविध पहलुओं की चर्चा करती हैं. इन सबके लिए वे शिक्षा तथा आत्मनिर्भरता पर विशेष बल देती हैं तथा व्यक्तित्व निर्माण पर भी बल देती हैं.

सुधा अरोड़ा की दृष्टि-परिधि में राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर घटित होनेवाली घटनाएं भी हैं. ससुराल की मांग से घबड़ाकर आत्महत्या करने वाली नवयुवती, मानसिक रूप से विक्षिप्त महिलाओं की वास्तविक स्थिति, रूप कुंवर का सती होना, बलात्कार की शिकार महिलाएं, डायन बताकर स्त्रियों को मारने की साजिश, डायना का राजसी ठाठ बाट, बंधनों को नकारना इन सब पर लेखिका की टिप्पणियां ग़ौर करने लायक हैं.

भंवरी बाई की संघर्ष गाथा पर उनके कई आलेख हैं. लेखिका इस दिशा में हुए अन्य धर्म जाति व प्रांतों के संघर्षों को भी महत्त्वपूर्ण जगह देती हैं. इमराना व सफिया के माध्यम से वे मुस्लिम समुदाय में स्त्रियों की नियति पर प्रकाश डालती हैं. इस संबंध में वे कुरान की नारीवादी व्याख्या भी करती हैं. कुरान की यह व्याख्या ठोस निष्कर्षों पर आधारित है और यह आलेख पुस्तक के महत्त्वपूर्ण आलेखों में से एक है.

स्त्री जीवन के अनुकूलन के संबंध में वे एक मेढ़क का दिलचस्प उदाहरण देती हैं जिसके पानी के तापमान को धीरे-धीरे बढ़ाया जाता है कि वह इस परिवर्तन का आदी हो जाता है और एक दिन तापमान बर्दाश्त न कर पाने के कारण मर जाता है. सुधा

अरोड़ा मानती हैं कि- ''स्त्री-सशक्तीकरण धीरे-धीरे बढ़ते हुए इस असहनीय तापमान से स्त्री का मोहभंग करने, उसे जागरूक बनाने और उसे पहचान देने की प्रक्रिया का नाम है.''

स्त्री जीवन पर मीडिया के प्रभाव व मीडिया में विचित्र स्त्री-जीवन के यथार्थ पर भी लेखिका विस्तार से चर्चा करती हैं. ध्यातव्य है कि भंवरी बाई पर बनी फिल्म 'बवंडर' की पटकथा सुधा अरोड़ा ने लिखी थी. इस पर सुधा अरोड़ा का एक विस्तृत आलेख है जो फ़िल्म जगत में चलनेवाले छद्मों को उजागर करता है. मीडिया यदि औरत को उसकी देह तक ही सीमित रखता है तो फ़िल्म के लिए स्त्री जीवन की विडंबना महज पैसा व पुरस्कार बटोरने का माध्यम बन जाती है. पर्दे के पीछे के इस सच को लेखिका बड़े साहस के साथ उजागर करती हैं. लेखिका के साहस का एक रूप वहां भी देखने को मिलता है जब वे डायना पर शोभा डे की हल्की व आपत्तिजनक टिप्पणियों की खुलकर आलोचना करती हैं और इस बहाने नारीवाद के छद्म पर प्रहार करने से नहीं चूकतीं.

'मटुकनाथ कहां नहीं है!' के माध्यम से सुधा अरोड़ा कलाकारों व साहित्यकारों के जीवन के छद्म को बेनकाब करती हैं. कला व साहित्य के अत्यंत मानवीय प्रतीत होने वाले ये कलाकार, साहित्यकार अपने व्यक्तिगत जीवन के पितृसत्तात्मक सत्ता के हथियारों का स्त्री पर प्रयोग करने से नहीं चूकते.

किंतु लेखिका निराशावादी नहीं हैं. समय की बदलती हुई नब्ज पर उनकी पकड़ है. स्त्री जीवन में आ रहे परिवर्तनों को सकारात्मक रूप में देखती हैं- ''लेकिन आज समय ने करवट बदली है निम्न औरतें मरती नहीं हैं. वे देर से ही सही, पर बढ़ते हुए तापमान को पहचानना सीख गयी हैं. ख़तरे की आहट को सुन रही हैं. अपने ज़िंदा होने के मूल्य सो समझ पा रही हैं.''

इस प्रकार ''आम औरत, ज़िंदा सवाल'' में सुधा अरोड़ा स्त्री जीवन के विविध सवालों को अत्यंत बेबाकी से उभारती हैं. उनकी गहरी संवेदनशीलता और तद्जनित आक्रोश के साथ साहस व ईमानदार स्वीकृति, ये वे गुण हैं जो इन आलेखों को अदभुत रूप से मर्मस्पर्शी, प्रामाणिक व प्रभावशाली बना देते हैं.

'कथादेश' की 'औरत की दुनिया' स्तंभ की चर्चा के बिना सुधा अरोड़ा के स्त्री विमर्श का मूल्यांकन अधूरा ही होगा. 'कथादेश' में २००४ से निकलने वाला स्तंभ 'औरत की दुनिया' ने स्त्री विमर्श को नया मोड़ दिया. सुधा अरोड़ा ने इसके द्वारा नारीवाद चिंतन को व्यवहारिक मुद्दों से जोड़ने की एक नयी पहल की.

सुधा अरोड़ा हिंदी की चर्चित कथाकार रही हैं और नारीवादी कार्यकर्त्ता भी. इन दोनों का सफल समन्वय यहां उपलब्ध होता है. 'हमारी विरासतः पिछली पीढ़ी की औरतें' के अनुभवों से प्रारंभ होता हुआ यह स्तंभ आज की वर्तमान स्त्री की घुटन को वाणी प्रदान करते हुए स्त्री-संघर्ष के साक्षात्कारों व नारीवादी फ़िल्मों में स्त्री चेतना की अनुगूंज पर दृष्टि डालते हुए वर्तमान अंतर्मंथन की सीमा तक स्त्री चिंतन व अनुभव को पहुंचाता है.

स्त्री विमर्श का अंतिम लक्ष्य है कि सैद्धांतिक अवधारणाओं को व्यवहारिक धरातल पर प्रतिष्ठित किये बिना हासिल नहीं किया जा सकता है. बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में विमर्श के रूप में जो स्त्री चेतना आकार ग्रहण करती है उसमें आगे चलकर इक्कीसवीं सदी में पर्याप्त वैविध्य आता है. अलग-अलग रचनाकार स्त्री-जीवन के अलग-अलग पहलुओं को लेकर उपस्थित होते हैं. बीसवीं शताब्दी का विमर्श विहंगावलोकन के समान है जिसमें सामान्यीकरण अधिक है - इक्कीसवीं सदी में यह विमर्श विशिष्टीकरण की ओर प्रवृत्त होता है. प्रभा खेतान यदि इसके सैद्धांतिक पक्ष को समृद्ध करती हैं तो अनामिका के विमर्श में संतुलित नारीवाद के दर्शन होते हैं. सुधा अरोड़ा स्त्री विमर्श को व्यावहारिक धरातल पर प्रतिष्ठित करती हैं और उसे अनुभवों के साथ जोड़ती हैं और इस प्रकार उसे एक प्रामाणिक धरातल देती हैं. यही नहीं, हिंदी के स्त्री विमर्श के नकारात्मक स्वर - अर्थात यह या वह नहीं होना चाहिए - से आगे बढ़कर उस शून्यता को भी भरती हैं - अर्थात यह या वह होना चाहिए. इस पर भी बल देती हैं. एक-एक अनुभव से गुज़रती हुई लेखिका स्त्री-जीवन का एक विराट कोलाज बनाती हैं और इस प्रकार उन अनुभवों का साधारणीकरण करती हैं और वे अनुभव हर स्त्री में अनुभव बन जाते हैं. आपबीती से वे जगबीती की कथा कहती चलती हैं.

१०४ हरदेव विहार, मूलचंदपथ,
बहादुरपुर, पटना-८०००२०

नयी-पुरानी संस्कृति की ग़ज़लें

✍सुरेश पंडित

ख़याल के फूल (ग़.संग्रह) : **मेयार सनेही**
प्रकाशक : अमन प्रकाशन, १/२० महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. **मूल्य** : १०० रु.

मुझे लगता है कि हर व्यक्ति अपनी संस्कृति का संवाहक होता है. वह जहां भी जाता है अपनी संस्कृति की सुंगध साथ ले जाता है. जहां रहता है अपनी गंध से परिवेश को सुगंधित करता है और वहां की गंध को स्वयं ग्रहण करता है. इस प्रकार शुद्ध या खालिस संस्कृति जैसी कोई चीज़ नहीं होती. हर संस्कृति अपने आप में कई तरह की गंधों, प्रभावों को समेटे रहती है.

व्यक्ति की तरह भाषाएं और साहित्य भी एक दूसरे से शब्दों, मुहावरों व विधाओं का लेन-देन करते रहते हैं. ग़ज़लें हिंदी में फ़ारसी से उर्दू के जरिये आयीं और अब इसी की बन बैठी हैं.

अभी हाल ही में छप कर आया बनारस के शायर मेयार सनेही का पहला संकलन 'ख़याल के फूल' अनायास पाठकों को इसलिए आकर्षित कर लेता है क्योंकि इसमें समाज की धड़कनों को जुबान देने की पुरज़ोर कोशिश की गयी है. वे बनारस के रहनेवाले हैं इसलिए वहां की तहज़ीब पर उन्हें नाज़ है. जो धरती कभी कबीर, तुलसी, प्रेमचंद, प्रसाद और बिस्मिला खां जैसे फनकारों की रचना स्थली रही हो उसकी समृद्ध विरासत पर सनेही इस कदर न्यौछावर हैं कि यह कहने से ख़ुद को रोक नहीं पाते- 'बनारस की तहज़ीब क्या पूछते हो / इसी शहर का नाम हिंदोस्तां है.'

मेयार सनेही को मैं आधुनिक युग के कबीर के रूप में देखता हूं. क्योंकि कबीर की तरह उन्हें भी जो परिवेश जीने के लिए मिला है उसमें वे स्वयं को समायोजित नहीं कर पा रहे हैं. इसलिए उन्हें एक तरह की बेचैनी हमेशा परेशान करती रहती है. कबीर अपने समय के धार्मिक पाखंडों, अंधविश्वासों और निरर्थक रीति रिवाज़ों से समाज को छुटकारा दिलाने के लिए कट्टरतावादी मौलवियों-पंडितों, हिंदू धर्म और इसलाम के ठेकेदारों के खिलाफ़ जंग छेड़ते हैं. दोनों की लड़ाई अन्याय, अत्याचार, अनैतिकता और प्रदर्शनप्रिय मनोवृत्ति के खिलाफ़ है. वे व्यवस्था को बदलना तो चाहते हैं लेकिन सामूहिक रक्तपात करके या निरंकुश दमन करके नहीं बल्कि उनका मन बदलकर करना चाहते हैं. दोनों के निशाने पर धर्मगुरू, समाज के मुखिया व राजनेता हैं लेकिन इन्हें वे अपना दुश्मन नहीं मानते. कबीर प्रेम की महिमा बखानते हुए कहते हैं- 'यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहीं / शीष उतारे भुंई धरे सो बैठे घर मांही.' इसी बात को सनेही इस तरह व्यक्त करते हैं- 'तबाह होने का जो हौसला नहीं रखते / वफ़ा की राह में वो इम्तिहान क्या देंगे.'

अपनी संस्कृति, सभ्यता, भाषा, भूषा व जीवन शैली पर गर्व करनेवाले लोग अक्सर इन चीज़ों को दुनिया में सर्वश्रेष्ठ घोषित करने से कभी नहीं थकते बल्कि कभी-कभी तो उनकी इन घोषणाओं को न मानने या इन पर प्रश्न चिन्ह लगा देनेवालों से लड़ भी बैठते हैं. लेकिन जब उनके बच्चे कॉन्वेन्ट/पब्लिक स्कूलों में पढ़ते हुए न केवल अंग्रेजी वेशभूषा बल्कि अंग्रेजी भाषा का भी इस्तेमाल करते हैं तो माता-पिताओं को कैसा अनुभव होता है देखिए - 'बहुत से लोग ख़ुश हैं जिनके बच्चे / जुबाने ग़ैर फर फर बोलते हैं.'

हिंदी की ग़ज़ल पुरानी उर्दू की ग़ज़लों से इसलिए भिन्न है क्योंकि इसका कथ्य जनवादी हो गया है. आज़ाद हिंदोस्तान के लोकतांत्रिक माहौल में ग़ज़ल के केंद्र में आम लोगों के सुख-दुख का आना स्वाभाविक था. इसने पुरानी भाषा और भावों को ही नहीं बदला बल्कि अंदाजे बयां को भी बदल दिया है. देखिए, शायर ज़िंदगी में बदलाव व अहमियत को स्वीकारते हुए भी लोगों को किस तरह के बदलाव से बचे रहने के लिए आग्रह करता है- 'बदलाव ज़िंदगी की अलामत तो है मगर / बदलो न अपने आपको बाज़ार की तरह.' बाज़ार को तो बदलते रहना ज़रूरी है क्योंकि तभी वहां ख़रीद-फ़रोख्त चलती रह सकती है. यदि वह बंद हो जाती है तो बाज़ार ठप्प हो जाता है. लेकिन मनुष्य तो ख़रीदी-बेची जानेवाली जिंस नहीं है.

बाज़ार में पैसे का खेल होता है. जिसके पास पैसा नहीं होता उसे बाज़ार बर्दाश्त नहीं करता. पैसा ग़रीब के पास नहीं होता. इसलिए बाज़ार को ग़रीब बिल्कुल नहीं सुहाता. लेकिन अधिकतर लोग तो ग़रीब ही होते हैं. जब बाज़ारवादी विश्व समाज उनको ठुकराता

है तब वे ही उसके विरुद्ध विद्रोह करते हैं और ऐसे निजाम को बदल डालते हैं. शायर की चेतावनी है- 'ऐ ज़माने इन ग़रीबों को न ठोकर से नवाज / वर्ना जब ये उठ खड़े होंगे, बुरा हो जायेगा.' पर व्यवस्था चाहे लोकतांत्रिक हो या राजशाही की ग़रीब उन्हें उखाड़ तो फेंकता है लेकिन कभी वैसी व्यवस्था नहीं ला पाता जो सौ प्रतिशत उसकी तरफदारी करती हो. शायर इसीलिए कहता है - 'कभी इसका तो कभी उसका निजाम आता है / देखना ये है कि कब दौरे अवाम आता है.' आजकल अक्सर शायरी या साहित्य पर यह इलजाम लगाया जाता है कि वह मनोरंजन देता है या बौद्धिक भूख की तृप्ति तो करता है, समाज को सुधारने या बदलने में उसकी कोई भूमिका नहीं होती. लेकिन मेयार सनेही न केवल इस मत को नकारते हैं बल्कि यह ऐलान भी करते हैं कि, 'जो मानते हैं आज की ग़ज़लों को बेअसर / पढ़ने के वास्ते उन्हें मेरी किताब दो.' यह किताब क्या कर सकती है इसका खुलासा भी वे इस शेर में करते हैं- 'शायरी से आग लग सकती है मेरे दोस्तो / क्या समझते हो ये लफ़्जी खेल-खरपतवार है!'

पूंजीवादी व्यवस्था में बाज़ार और धर्म एक दूसरे के पूरक बन गये हैं और मीडिया इन दोनों के इस नापाक गठबंधन को मजबूत करता है. सोची समझी साजिश के तहत पहले कोई अफ़वाह फैलायी जाती है और बिना उसकी सच्चाई का पता लगाये अख़बार उसे ख़बर बनाकर शाया कर दते हैं. नतीजा तबाही बरपाने वाला होता है. शेर देखिए - 'अफ़वाहों ने आग लगायी, घी डाला अख़बारों ने / ये हैं दोनों दोस्त पुराने कहने की यह बात नहीं.' सत्ता जब पूंजीपरस्त होती है तो अपनी करतूतों को जस्टीफाई करने के लिए वह मज़हब का सहारा लेने से भी नहीं चूकती. शायर को मज़हब का यह अवमूल्यन अच्छा नहीं लगता. वह अफ़सोस जताता है- 'तुमने मज़हब को सियासी पैंतरों में रख दिया / सर पे रखनेवाली शै को ठोकरों में रख दिया.'

समझदार लोगों का यह दृढ़ मत है कि सत्ता मनुष्य को भ्रष्ट करती है. वह जितनी व्यापक होती है भ्रष्टाचार का दायरा भी उतना ही विस्तृत होता है. अच्छे भले लोग जो व्यवस्था के ग़लत कामों की आलोचना करते नहीं थकते / जब उसका अंग बन जाते हैं तो उसके गुण गाने लग जाते हैं- 'कल तक जो तब्दीली की बात करते थे / उन लोगों का लहजा अब दरबारी है.' मोहब्बत को शायर ख़ुदा की इबादत का ही एक तरीका मानता है. इसलिए जब यह कहा जाता है कि 'न ख़ुदा ही मिला न विसाले सनम भी / न इधर के रहे न उधर के रहे.' तो सनेही जवाब देते हैं- 'ख़ुदा भी मिलेगा विसाले सनम भी / मुहब्बत को अपना मज़हब बना ले.'

वे माहौल में व्याप्त इतनी सारी बुराइयों के रहते हुए और झूठ को अक्सर सच्चाई से ऊपर उठते हुए देखकर भी मायूस नहीं हैं. उनका आशावाद उन्हें हरदम इनसे लड़ने को तैयार रखता है. वे बेख़ौफ यह ऐलान करते है - 'सनेही ज़िंदगी के जहर को रख दो ठिकाने से / कि मुमकिन है इसी से एक दिन अमृत का उद्भव हो.' इस तरह मेयार सनेही की इन ग़ज़लों में आप समाज की कुरूप सच्चाइयों से ही साक्षात्कार नहीं करते उन्हें फिर से शिव व सुंदर बनाने का हौसला भी पाते हैं.

३८३, स्कीम नं.२, लाजपतनगर,
अलवर-३०१००१

ग़ज़ल

डॉ. रंजना वर्मा

दर्द उसने बहुत सहा होगा ।
तब कहीं जा के कुछ कहा होगा ।।
कितनी नदियां निकल गयी होंगी ।
जल हिमालय का यूं बहा होगा ।।
कुछ तो मकसद ज़रूर था, उसने ।
हाथ यों ही नहीं गहा होगा ।।
कई पीपल उगे दिवारों पर ।
तब कहीं जा के घर ढहा होगा ।।
क़त्ल चुपचाप देखने वाला ।
वो अकेला नहीं रहा होगा ।।

कवि-कुटीर
६/११/२५५, मुगलपुरा (हैदरगंज), फैजाबाद
(उ. प्र.)-२२४००१

ग़ज़लें

✍ केवल गोस्वामी

अजीब उमस है घर के हर एक कोने में,
बड़ी तकलीफ़ होती है यहां पे सोने में ।
खिड़कियां खोल दो आने दो हवा का झोंका,
माहौल बदलेगा ताज़ा हवा के होने में ।।
ज़माने भर का है गर्दो गुबार दिल में मेरे,
उखाड़ फेंको इसे क्या मजा है ढोने में ।।
बहुत ज़रूरी है छटना यह धुंध आंखों की,
लगेगा वक़्त अब नज़रों से साफ़ होने में ।।
झरे हैं शाख से जो उन गुलों पर क्या रोना,
खिलेंगे फिर कहीं वो अश्कों में पिरोने से ।।
यह माना तुम से अकेले नहीं कुछ भी होगा,
माहौल बदलेगा लेकिन तुम्हारे होने से।।
चलो कि मिल के ज़माने की नब्ज को देखें,
कहां हैं अड़चनें अब इन्कलाब होने में ।।

एक एक कर बुझ गये आकाश के तारे,
देखते ही देखते गुम हो गये सारे ।।
मैंने इन्हीं से आस की पतवार थी बांधी,
जाने कहां से आ गयी हालात की आंधी ।।
कलियां तो क्या पत्ते भी झरने लगे रुख से,
आंसू भी सारे सूख गये बेपनाह दुख से ।।
घनघोर अंधेरों में भटकती थी मेरी लाश,
उसको उठानेवाला कहीं कोई होता काश ।।
था घोर बयाबां न शमशान का पता
ढूंढ़े से न मिलते थे कहीं पांव के निशां ।।
मैं हूं यहां और मेरे साथ काली रात है,
सीने में सुलगती हुई इक गहरी बात है ।।
निकलेगी पहले जान या बीतेगी काली रात
कोई नहीं कहूं मैं किससे अपने दिल की बात ।।

✉ जे. ३६३, सरिता विहार, मथुरा रोड, नयी दिल्ली-११००७६.

लघुकथा

अलग-अलग दर्शक

✍ ज्ञानदेव मुकेश

मंदिर की सीढ़ी के नीचे एक बार फिर एक नवजात शिशु रखा हुआ पाया गया. यह ख़बर आग की तरह फैली. लोग-बाग जुटने लगे. शोरगुल होने लगा. तभी पुजारी जी भी आ पहुंचे. उन्हें मंदिर तक जाने में तकलीफ़ हो रही थी. उन्होंने लोगों को हटाना शुरू किया. मगर लोग टस-से-मस नहीं हुए. वे बच्चे को लगातार देखे जा रहे थे. यह देख पुजारी जी ने कहा, ''वह औरत मां होकर भी बच्चे को देखने की इच्छा नहीं रखती, मगर तुम इस बच्चे के कुछ नहीं होते हुए भी क्या देख रहे हो?''

एक व्यक्ति का जवाब आया, ''मैं बच्चे को नहीं, उस कठोर मां की निष्ठुरता को देख रहा हूं, जिसने ममता का गला घोंट दिया.''

तभी एक दूसरे व्यक्ति ने कहा, ''मैं उस चालाक औरत के स्वार्थ को देख रहा हूं जो अपनी इज़्ज़त बचाने के लिए अपने टुकड़े को यहां डाल गयी.''

कुछ पल के लिए सन्नाटा छा गया. पुजारी जी ने पूछा, ''क्या कुछ और भी दिख रहा है?''

सम्मिलित आवाज़ आयी, ''नहीं!!''

तभी एक औरत दौड़ते हुए भीड़ के निकट आयी और उसने गरजते हुए पूछा, ''अच्छा, तो तुम्हें उस कायर पुरुष की दुष्टता नहीं दिखती जिसने औरत और उसके बच्चे को ऐसी परिस्थिति में ला ढकेला?''

पुरुष समुदाय मूक हो गया.

✉ श्री आई. एन. मल्लिक का मकान,
स्टेट बैंक के पास, शिवाजी कॉलोनी, पूर्णिया-८५४३०१.

कविताएं

✍ **तेज राम शर्मा**

तारे की चमक

बारूद के धुएं में घिरा
कविता की आंख से
आदमी आदमी-सा
दिख रहा है कुछ-कुछ.
जेठ की दुपहरी में
बबूल की छांव सिमटे-सहमे हाथों में
सुनाई दे रही है
सिक्कों की खनक.
जिस जीभ में
रच-बस गया था
मिट्टी-सा स्वाद
उस पर ईख-सा
टपका है कुछ.
गुंधे आटे में
खमीर-सा मिला है कुछ
फूला-सा है देश का सीना
नदी-सी आंख
आकाश की ओर उठी है
संकल्पों-सी तन रही है
देश की रीढ़.
सुबह के पहले-सी सुबह में
दिख रही है क्षीण-सी
देश की आंखों में
तारे की चमक.

अटक गया है समय तुम्हारे लिए

मेरे हाथों में गुलाब
जस-का-तस इतने वर्षों से
पारदर्शी एक बूंद
अटकी है पंखुड़ी पर
सांसों की गंध
घेरे है चारो ओर मुझे
शब्दों से क्या मैं
छेड़ पाऊंगा इस स्थिर समय को!
इन हाथों से जहां उभर गयी हैं
मोटी नीली नसें
इतनी गहराई के इस पार से
कैसे छुऊं तुम्हें
तुम जो
समय में अटकी अम्लान.
मैं हैरान हूं
कि गुलाब से टूटी पंखुड़ी
अनंत के किसी कोने में
लिये है रूप की पारदर्शिता
रस की मधुरता लिये है
अनंत से भेजती है सुंगध की फुहार
मौन शब्दों के हाथ
भेजती है प्यार का संदेश
कोमल स्पर्श की ताज़गी भेजती है.

**श्री राम कृष्ण भवन, अनाड़ेल,
शिमला-१७१००३**

ग़ज़ल

✍ **डॉ. रंजना वर्मा**

*चांदनी है दूध की धारा ।
या कोई अहसास है प्यारा ।।
ढूंढ़ता है रोटियां नभ में ।
कहीं कोई भूख का मारा ।।
अनबुझी है प्यास अधरों पर ।
पास है सागर मगर सारा ।।
राह में कठिनाइयां कितनी ?
पर मनुज का पुत्र कब हारा ।।
ज़िंदगी है रेत मुट्ठी की ।
प्राण पंछी देह की कारा ।।*

**कवि-कुटीर
६/११/२५५, मुगलपुरा (हैदरगंज),
फैजाबाद (उ. प्र.)-२२४००१**

लघुकथा

दौड़

✍ डॉ. रामनिवास 'मानव'

मैं काफ़ी देर से उसकी गतिविधियों को देख रहा हूं. वह हर आते-जाते वाहन को रुकने का संकेत करता है, लेकिन रुकना तो दूर, कोई उसकी ओर देखता तक नहीं. उसके हाव-भाव से स्पष्ट है कि वह देश के किसी दूर-दराज़ इलाके से आया कोई अनपढ़ ग्रामीण है, जो संभवतः पहली बार मुंबई जैसे महानगर में आया है और इसके तौर-तरीक़ों से बिल्कुल अपरिचित है.

मुझे लगता है वह कोई व्यक्ति नहीं, देश का अति पिछड़ा गांव है, जो तेज़ रफ़्तार से दौड़ते महानगर से जैसे कह रहा है- ''प्रगति की इस दौड़ में कूछ दूर तक, मुझे भी साथ ले चलो महानगर!'' लेकिन कुछ देर के लिए ठिठक कर उसके संकेतों को देखे, उसकी भावनाओं को समझे, इसकी फ़ुर्सत कहां है, महानगर के पास!

फिलहाल मेरा चिंतन, उस ग्रामीण का संकेत और महानगर की दौड़ ज़ारी है.

७०६ सेक्टर-१३, हिसार-१२५००५

ग़ज़ल

हमारे हमसफर

✍ हौशिला 'अन्वेषी'

सत्य जिनके पास है, बस वे हमारे हमसफर ।
कम हैं फिर भी आग हैं, बस वे हमारे हमसफर ।।
बोलना पड़ता नहीं, तैयार बैठे हैं सभी ।
आवाज़ के मोहताज हैं, बस वे हमारे हमसफर ।।
दर्द सीने में दबाये, चल रहे बेताब वे ।
आदेश के मानिंद हैं, बस वे हमारे हमसफर ।।
संसद नहीं है रास्ता, फिर भी सफर हम कर रहे ।
पोल खोलेंगे वहां भी, वे हमारे हमसफर ।
जो भटक कर जा चुके हैं, जलजला की राह में ।।
उनको बुलाने जा रहे हैं, वे हमारे हमसफर ।
कुछ अज़ीजों के लिए मैं, रो पड़ा था उस समय ।।
उनकी मशालें थामते, बस वे हमारे हमसफर ।
जो सफर मैं तय किया, उसमें सुधारा कर लिया ।।
लाल रंग कुछ कम किये हैं, वे हमारे हमसफर ।
नाक पकड़े हैं नकेली, दे रहे हैं प्यार से ।
वक़्त को काबू में करने जा रहे हैं हमसफर ।।
हम रुके हैं दिख रहे, यह भ्रम न पालो यार तुम
हर रुकावट से लड़े हैं, वे हमारे हमसफर ।।

९१ ई, सराह बिल्डिंग नं, २, बाज़ार रोड, बांद्रा, मुंबई-४०००५०

निवेदन

इस अंक के साथ जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो रहा है उनसे निवेदन है कि शीघ्र ही अपने ग्राहक शुल्क का नवीनीकरण करा लें.

-संपादक